गणतंत्र दिवस विशेषांक

योजना

ISSN-0971-8397 वर्ष: 44 अंक 10 जनवरी 2001 मूल्य: 15 रुपये

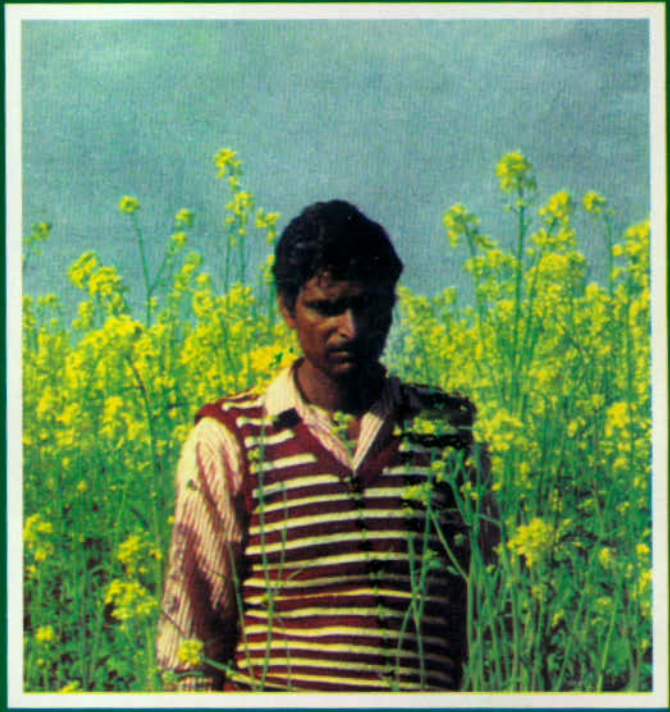

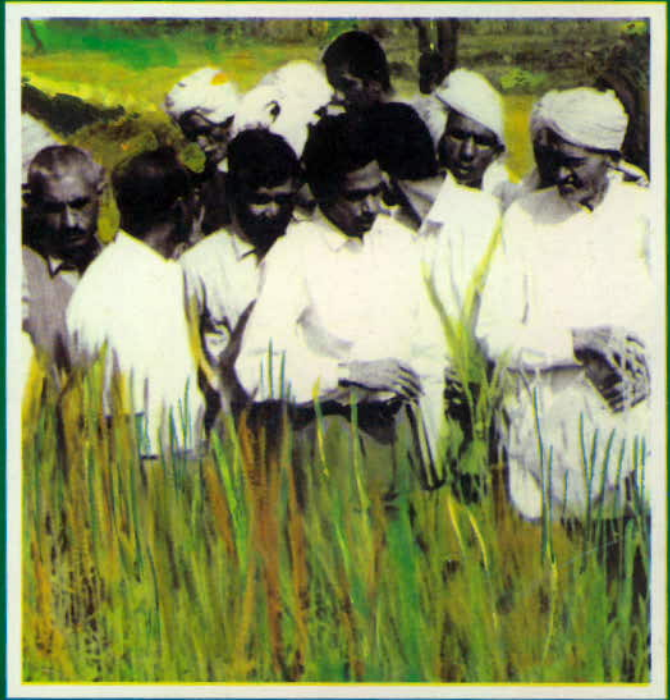

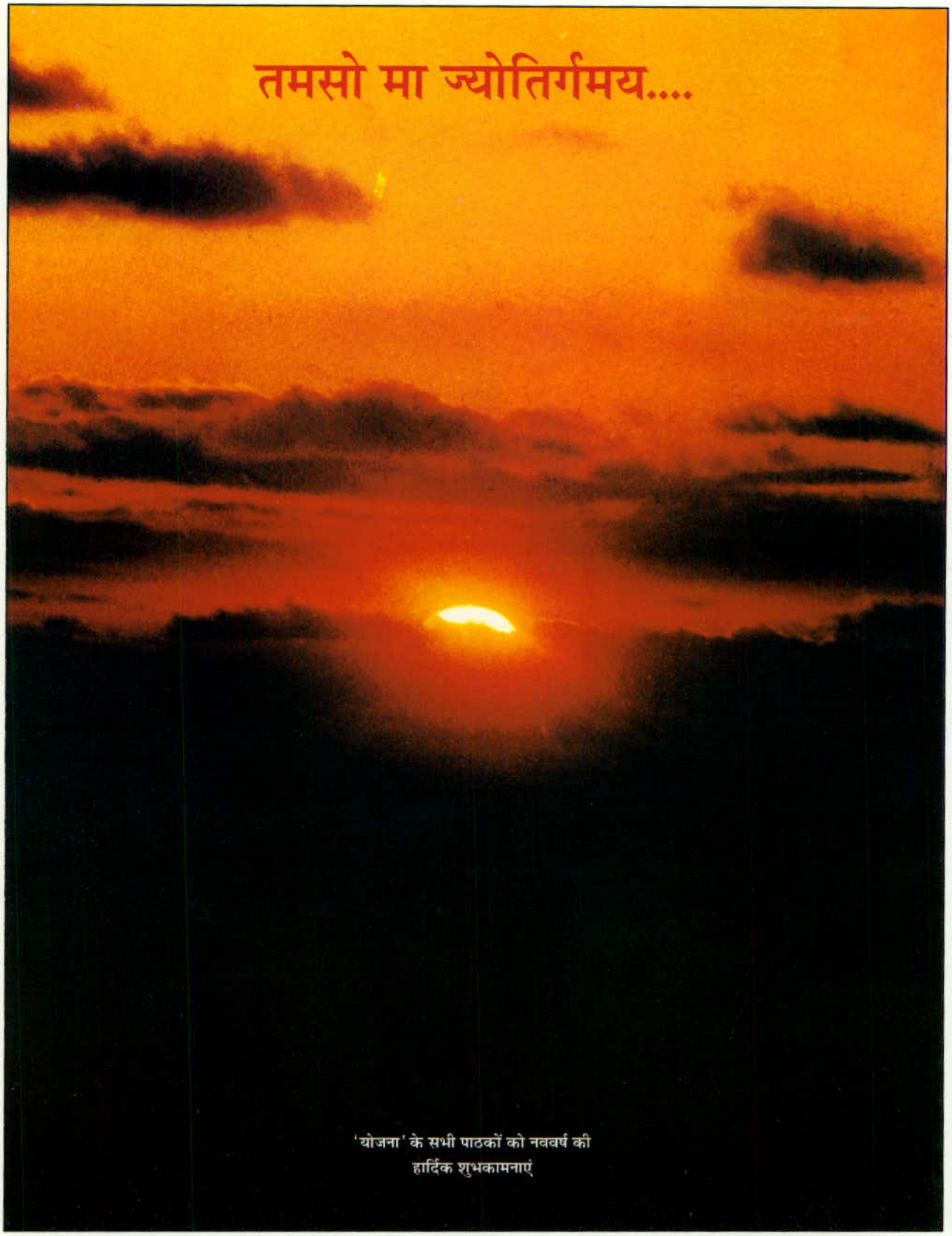
तमसो मा ज्योतिर्गमय....
'योजना' के सभी पाठकों को नववर्ष की
हार्दिक शुभकामनाएं

योजना

योजना और विकास को समर्पित भारत
के नव-निर्माण की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 44 अंक 10 | जनवरी, 2001 | पौष-माघ, शक-संवत् 1922

प्रधान संपादक
प्रेम द्विवेदी
सहायक संपादक
अंजनी भूषण
उप संपादक
ललिता खुराना
संपादकीय कार्यालय
कमरा नं. 538 ए, योजना भवन, संसद मार्ग,
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष : 3710473, 3717910
3715481/2510, 2508, 2566

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी
विज्ञापन एवं वितरण प्रबंधक
प्रकाश चन्द्र आहूजा
आवरण : **एम.एम. मलिक**

इस अंक के लेखक

बिबेक देबराय, निदेशक, राजीव गांधी समसामयिक अध्ययन संस्थान, राजीव गांधी प्रतिष्ठान, नई दिल्ली; बी. भट्टाचार्य, संकाय अध्यक्ष, भारतीय विदेश व्यापार संस्थान; डी.एन. तिवारी, सदस्य, योजना आयोग; जे.एस. समरा, उप महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली; के. गोपकुमार, उप निदेशक (मत्स्य), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली; ओमेश सहगल, सचिव, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग विभाग, नई दिल्ली; सुरिन्दर सूद, कृषि सम्पादक, बिजनैस स्टैंडर्ड; एस. प्रकाश तिवारी, निदेशक, राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान केंद्र, इंदौर; बी.एस. पद्मनाभन, वरिष्ठ पत्रकार, दिल्ली; अरबिन्द घोष, वरिष्ठ पत्रकार, दिल्ली; पी.सी. भाटिया, सहायक महानिदेशक (कृषि), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली; एच.पी. सिंह, निदेशक, केन्द्रीय शुष्क भूमि कृषि अनुसंधान, हैदराबाद; टी.वी. सत्यनारायणन, प्रमुख पत्रकार, दिल्ली।

इस अंक में

- राष्ट्रीय कृषि नीति — 3
- राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार संगठन — बिबेक देबराय — 10
- खाद्य सुरक्षा, राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार संगठन — बी. भट्टाचार्य — 15
- कृषि में पानी का इष्टतम उपयोग — डी.एन. तिवारी — 21
- जल-संभर का साझा प्रबंधन — जे.एस. समरा — 25
- मत्स्यपालन क्षेत्र की अपार संभावनाएं — के. गोपकुमार — 30
- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग : वर्तमान परिदृश्य और संभावनाएं — ओमेश सहगल — 35
- फसल बीमा और राष्ट्रीय कृषि नीति — सुरिन्दर सूद — 40
- बीज विकास और बौद्धिक संपदा अधिकार — एस. प्रकाश तिवारी — 45
- कृषि क्षेत्र की महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने के प्रयास — बी.एस. पद्मनाभन — 49
- आज का नया मंत्र : कृषि में विविधता — अरबिन्द घोष — 54
- वर्षा-सिंचित कृषि : अनुसंधान और विकास परिप्रेक्ष्य — पी.सी. भाटिया, एच.पी. सिंह — 59
- गांवों की कायापलट के लिए तकनीक हस्तांतरण — टी.वी. सत्यनारायणन — 67

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने हैं। अतः यह जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से सम्बद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

चंदे की दरें : वार्षिक : 70 रु.; **द्विवार्षिक** : 135 रु.; **त्रैवार्षिक** 190 रु.

इस अंक में

राष्ट्रीय कृषि नीति में भारतीय कृषि की विशाल एवं अब तक उपेक्षित मजबूतियों का लाभ उठाने पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही ग्रामीण संरचनात्मक ढांचे को मजबूत बनाने पर भी ध्यान दिया गया है जो कृषि के तीव्र विकास के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ समझे जाने वाले देश के 2 करोड़ किसानों/कृषिकर्मियों का कल्याण इस नीति का प्रमुख उद्देश्य है। अत: देश के प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा उपयोग सुनिश्चित करने पर बल दिया गया है जो ठोस तकनीक पर आधारित हो, आर्थिक दृष्टि से लाभकारी हो, पर्यावरण की रक्षा करता हो एवं सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि क्षेत्र में अद्भुत प्रगति दर्ज की गई। खाद्यान्न उत्पादन में चौगुनी वृद्धि हुई और वह पचास के दशक के 5 करोड़, दस लाख टन से बढ़कर शताब्दी के अंत तक 20 करोड़ 60 लाख टन हो गया। इतना अवश्य है कि विकास के इस नमूने ने अनेक समस्याओं को भी जन्म दिया। अनेक क्षेत्रों का असमान विकास, प्राकृतिक संसाधनों का अपक्षरण, पूंजी की अपर्याप्तता एवं किसानों की घटती आय इनमें मुख्य हैं। भू-संसाधनों के बेहतर प्रबंधन एवं उपलब्ध भूमि की उर्वरकता बढ़ाकर इन समस्याओं से उबरने का इस नई नीति में प्रयास किया गया है। वर्षा-आधारित देश की दो-तिहाई फसली भूमि के विकास हेतु जलसंभर प्रणाली के अंगीकरण की एक दीर्घावधि योजना पर अमल किया जाएगा। साथ ही सिंचित क्षेत्र में पौधारोपण बढ़ाकर संबद्ध उत्पादों द्वारा खाद्यान्न वृद्धि एवं निर्यात संवर्द्धन के उपाय भी किए जाएंगे।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पोषण हेतु संबद्ध क्षेत्रों का भी विकास किया जाएगा। कृषि क्षेत्र में जहां उत्पादकता बढ़ाने हेतु नई तकनीकी अपनाई जाएगी वहीं महिलाओं के सशक्तिकरण के भी प्रभावी उपाय किए जाएंगे। विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौते के अंतर्गत आयातों पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटने का दुष्प्रभाव भारतीय किसानों के हितों पर न पड़े, इसका आश्वासन भी नीति में दिया गया है। देश के भीतर खाद्यान्न की आवाजाही पर प्रतिबंध धीरे-धीरे समाप्त किए जाएंगे। नीति का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है कृषि क्षेत्र के आंकड़ा-एकत्रीकरण आधार को और व्यापक बनाना ताकि बेहतर आयोजन के लिए ठोस अनुमान एवं भविष्यवाणी उपलब्ध हो सके।

कृषि किसान के लिए एक लाभप्रद व्यवसाय सिद्ध हो, इस हेतु उसके निजी निवेश एवं पूंजी विकास के लिए अनुकूल आर्थिक वातावरण निर्मित करना भी नीति के उद्देश्यों में शामिल है। कृषि क्षेत्र में दिए जाने वाले प्रोत्साहनों की विकृतियों को दूर करके इस उद्देश्य को हासिल किया जाएगा। भारत में कृषि एक जीवन पद्धति है, एक परंपरा है जो सदियों से लोगों के विचार, जीवन दर्शन, संस्कृति एवं आर्थिक जीवन को प्रभावित करती आई है। अत: देश के सामाजिक-आर्थिक विकास की रणनीतियों का मूल कृषि ही है, और रहेगी। यही राष्ट्रीय कृषि नीति का वृहद आयाम है। विशेषांक में शामिल लेख इस नई नीति के कुछ प्रमुख अंगों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करते हैं।

राष्ट्रीय कृषि नीति

हमारे कृषि-प्रधान देश के विकास में कृषि के महत्वपूर्ण योगदान को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा जिस नई कृषि-नीति का प्रतिपादन किया गया है, उसके मूल पाठ से यहां प्रमुख अंश उद्धरित हैं।

कृषि ऐसी जीवन पद्धति और परंपरा है जिसने भारत के लोगों के विचार दृष्टिकोण, संस्कृति और आर्थिक जीवन को सदियों से संवारा है। अत: कृषि देश के नियोजित सामाजिक-आर्थिक विकास की सभी कार्यनीतियों का मूल है तथा इसका केन्द्र बनी रहेगी। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु घरेलू खाद्य सुरक्षा के लिए भी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा निर्धनता स्तर में तेजी से कमी करने के लिए, आय और धन सम्पदा के वितरण में साम्य लाने के लिए कृषि का तेजी से विकास आवश्यक है।

स्वतंत्रता के बाद कृषि में आशातीत प्रगति हुई है। वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन के पिछले 50 वर्षों के 5 करोड़ 10 लाख टन से शताब्दी के मोड़ पर 20 करोड़ 6 लाख मिलियन टन तक हो जाने का अनुमान है। इस प्रकार कृषि ने खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा हमारे देश में खाद्यान्न की कमी से बचने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कृषि की वृद्धि के ढंग से अलग-अलग क्षेत्रों, फसलों और कृषक समुदाय के विभिन्न वर्गों का असमान विकास हुआ है तथा कुछ क्षेत्रों में उत्पादकता-स्तर नीचे गिरा है तथा प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास हुआ है। पूंजी की अपर्याप्तता, अवसंरचनात्मक सहायता का अभाव तथा संचालन पर नियंत्रण, भंडारण और कृषि उत्पादों की बिक्री जैसी मांग पक्ष की बाधाएं कृषि क्षेत्र की आर्थिक व्यवहार्यता को प्रभावित करती रही हैं। परिणामत: नब्बे के दशक में कृषि वृद्धि में गिरावट की प्रवृत्ति देखी गई।

लगातार प्रतिकूल मूल्य व्यवस्था तथा निम्न मूल्य संवर्धन के कारण कृषि एक अलाभप्रद व्यावसाय हो गया जिसके कारण लोग कृषि कार्य छोड़ रहे हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन बढ़ रहा है। भूमंडलीय प्रणाली में कृषि व्यापार को जोड़ने की स्थिति में यह हालत और उग्र हो जाएगी। अत: तत्काल उपचारात्मक उपाय करने की आवश्यकता है।

लगभग 20 करोड़ भारतीय कृषक और कृषि मजदूर भारतीय कृषि की रीढ़ हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के बावजूद कृषक समुदाय के कल्याण की बात देश के नियोजकों और नीति-निर्माताओं की चिंता का विषय रही है। कृषि क्षेत्र में सुधारों का मुख्य आधार कृषि अर्थव्यवस्था की स्थापना है क्योंकि यह भारत के करोड़ों लोगों के लिए खाद्य और पोषक तत्व, बढ़ते औद्योगिक आधार के लिए कच्चा माल एवं निर्यात अधिशेष तथा कृषि समुदायों द्वारा समाज को दी गई सेवाओं के लिए उचित और न्यायसंगत लाभ की प्रणाली सुनिश्चित करता है। यह कृषि क्षेत्र में सुधार का मुख्य केन्द्रबिन्दु होगा।

राष्ट्रीय कृषि नीति में भारतीय कृषि की विशाल अदोहित क्षमता को वास्तविक रूप देने, तीव्रतर कृषि विकास को समर्थन देने के लिए ग्रामीण अवसंरचना को सुदृढ़ करने, मूल्य प्रवर्धन को बढ़ावा देने, कृषि व्यवसाय की वृद्धि को तीव्रता प्रदान करने, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करने, किसानों, कृषि मजदूरों और उनके परिवारों का जीवन-स्तर सुधारने, शहरी क्षेत्रों में प्रवास हतोत्साहित करने तथा आर्थिक उदारीकरण और विश्वव्यापीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने की परिकल्पना है। अगले दो दशकों में इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- कृषि क्षेत्र में प्रति वर्ष 4% से अधिक वृद्धि दर प्राप्त करना।
- वृद्धि, जो संसाधनों के कुशल उपयोग पर आधारित है तथा अपनी मृदा, जल और जैव विविधता का संरक्षण करना।
- साम्य वृद्धि, अर्थात वृद्धि जो क्षेत्र-दर-क्षेत्र तथा किसान-दर-किसान व्याप्त है।
- ऐसी वृद्धि जो मांग के अनुसार हो और स्वदेशी बाजारों की मांग को पूरा करे तथा आर्थिक उदारीकरण और विश्वव्यापीकरण से उत्पन्न चुनौतियों की स्थिति में कृषि उत्पादों के निर्यात से अधिकतम लाभ मिल सके।
- वृद्धि जो प्रौद्योगिकीय, पर्यावरणीय तथा वित्तीय रूप से दीर्घकालीन हो।

दीर्घकालीन कृषि

इस नीति में कृषि के दीर्घकालीन विकास को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी रूप से ठोस, आर्थिक रूप से व्यवहार्य, पर्यावरण की दृष्टि से अपक्षयी तथा देश के प्राकृतिक संसाधन भूमि, जल और आनुवांशिक संपदा को बढ़ावा देने की परिकल्पना है। भूमि पर जैविक दबाव को सीमित करने तथा कृषि भूमि के गैर-कृषि प्रयोजनों में अंधाधुंध परिवर्तन पर नियंत्रण पाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

सरकार देश की भूमि और मृदा संसाधनों की गुणवत्ता के सुधार को स्थायी रूप से महत्व दे रही है। अपरदित एवं परती भूमि के सुधार को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी ताकि उनके उत्पादक उपयोग को इष्टतम बनाया जा सके। पनधारा आधार पर प्ररोही उपायों द्वारा वर्षा जल के संरक्षण तथा पनधारा समुदायों की सहभागिता से कृषि और कृषि वानिकी के जरिए बायोमास में वृद्धि करके वर्षा सिंचित क्षेत्रों का समेकित और समग्रतावादी विकास किया जाएगा। पनधारा के सभी स्थानिक घटकों जैसे कृष्य भूमि, अकृष्य भूमि और नालियों का एक भू-जलीय तत्व के रूप में उपचार किया जाएगा।

देश के प्रचुर जल-संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग और संरक्षण को बढ़ावा दिया जाएगा। सतही जल और भूजल के संयुक्त उपयोग को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। जल के अधिक कुशल उपयोग और उत्पादकता में सुधार के लिए स्वस्थाने नमी-प्रबंध तकनीक, जैसे मल्चिंग के उपयोग और टपका व छिड़काव तथा पादप घर प्रौद्योगिकी जैसी प्लास्टिक और माइक्रो ओवरहैंड प्रेसर्ड सिंचाई प्रणलियों के उपयोग को बढ़ावा दिया जाएगा। क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिए पहाड़ी और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जल कृषि संरचना और उपयुक्त जल संचार प्रणालियों के प्रबंध पर जोर दिया जाएगा।

पिछले कुछ दशकों में भारत के पादप एवं पशु आनुवांशिक संसाधन अवक्रमण और संकीर्ण आधार देश की खाद्य-सुरक्षा को प्रभावित कर रहे हैं। आनुवांशिक संसाधनों के सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन और फसलों, पशुओं तथा उनकी जंगली प्रजातियों में लागू की गई स्वदेशी तथा बहिर्जातीय आनुवांशिक परिवर्तनशीलता पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाएगा। ऐसे पादप, जो जल की खपत कम करते हों, सूखे के प्रति सहनशील हो, कृमि प्रतिरोधी हो, जिनमें पोषक-तत्वों की मात्रा अधिक हो, अधिक उपज देते हो तथा पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित हों, के विकास के लिए जैव-प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा दिया जाएगा। देश की विशाल जैव विविधता की सूची बनाने तथा उसे वर्गीकृत करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाया जाएगा।

कृषक समुदायों को पर्यावरणीय चिंताओं के प्रति संवेदनशील बनाने को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। समेकित पोषक तत्वों तथा कृमि प्रबंध के जरिए बायोमास, कार्बनिक और अकार्बनिक उर्वरकों के संतुलित उपयोग तथा कृषि रसायनों के नियंत्रित उपयोग को बढ़ावा दिया जाएगा ताकि कृषि उत्पादन में स्थायी वृद्धि प्राप्त की जा सके।

कृषि प्रणालियों में परिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने तथा बायोमास उत्पादन में वृद्धि के लिए कृषि वानिकी और सामाजिक वानिकी मुख्य अपेक्षाएं हैं। पोषक तत्वों के प्रभावी चक्रण, नाइट्रोजन के निर्धारण, कार्बनिक पदार्थों के वर्धन तथा सरणि में सुधार के लिए कृषि वानिकी पर मुख्य रूप से जोर दिया जाएगा। किसानों को फार्म/प्रौद्योगिकी, विस्तार और ऋण सहायता पैकेज विकसित करके अधिक आय सृजन और सीमांत भूमियों के कुशल उपयोग तथा कृषि और फार्म वानिकी के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए फार्म/कृषि वानिकी शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

जैव कृषि व पोषाहारीय एवं औषधीय प्रयोजनों के लिए परंपरागत पद्धतियों, ज्ञान तथा बुद्धि को समेकित करने व मूल्यांकन करने और स्थायी कृषि वृद्धि के लिए उनका उपयोग करने का सतत प्रयास किया जाएगा।

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा

निरंतर जनसंख्या वृद्धि के दबाव के कारण बढ़ती खाद्य मांग तथा कृषि उद्योगों के विस्तार के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए फसल उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के विशेष प्रयास किए जाएंगे। इसके लिए क्षेत्र विशिष्ट रणनीति पर अमल किया जाएगा। उच्च पोषण वाली नई फसल किस्मों के विकास, विशेषकर खाद्य फसलों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन एवं खाद्य आपूर्ति, निर्यात में वृद्धि के लिए वर्षा सिंचित एवं सिंचित बागवानी, पुष्पकृषि, कंद-मूल फसलों, बागवानी फसलों, सुगंधित एवं चिकित्सीय फसलों, मधुमक्खी पालन एवं रेशम कृषि विकास पर मुख्य जोर दिया जाएगा।

पशु पालन एवं मात्स्यिकी भी कृषि क्षेत्र में पूंजी तथा रोजगार का सृजन करते हैं। कृषि विविधिकरण, भोजन में जंतु प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ाने तथा निर्यात हेतु अधिशेष के सृजन के प्रयासों में पशु पालन, कुक्कुट पालन, दुग्ध उद्योग एवं जल कृषि के विकास को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। दूध, मांस, अंडा एवं पशु उत्पादों की आवश्यकता पूरी करने तथा कृषि कार्यों तथा परिवहन हेतु गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत के रूप में भारवाही पशुओं की भूमिका बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय पशु प्रजनन नीति बनाई जाएगी।

उत्पादन एवं उत्पादकता-स्तर बढ़ाने के लिए पशु उत्पादन के साथ-साथ स्वास्थ्य क्षेत्र में उपयुक्त प्रौद्योगिकियों के सृजन एवं विस्तार पर अधिक ध्यान दिया जाएगा। खाद्य एवं चारा आवश्यकताओं को पूरा करने तथा पशु पोषण एवं कल्याण को बढ़ावा देने के लिए चारा फसलों और चारा वृक्षों की खेती में वृद्धि की जाएगी। बूचड़खानों के आधुनिकीकरण, ठठरी के उपयोग और उनके मूल्यवर्धन पर जोर के साथ-साथ प्रसंस्करण, विपणन और परिवहन सुविधाओ को उन्नत करने पर प्राथमिक रूप से ध्यान दिया जाएगा।

समुद्री एवं अंतर्देशीय मात्स्यिकी के लिए समेकित दृष्टिकोण जिसका उद्देश्य दीर्घकालीन जल कृषि को प्रोत्साहन देना है, अपनाया जाएगा। फिन एवं शेल मत्स्य कृषि के साथ-साथ पर्ल कल्चर, उनकी उत्पादकता को आदर्श स्तर तक लाने, उनके कटाई एवं कटाई उपरांत प्रचालनों, मत्स्य नावों के यंत्रीकरण, मत्स्य बीजों के उत्पादन के लिए अवसंरचना सुदृढ़ करने, मत्स्य नावों के ठहराने एवं उतारने की सुविधाओं के निर्माण तथा विपणन अवसंरचना के विकास को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।

प्रौद्योगिकी सृजन एवं हस्तांतरण

कृषि एवं बागवानी फसलों, पशु प्रजातियों एवं जल-कृषि की स्थान-विशिष्ट एवं आर्थिक रूप से व्यवहार्य उन्नत किस्मों के विकास के साथ-साथ जर्मप्लाज्म एवं अन्य जैव विविधता संसाधनों के संरक्षण एवं उचित उपयोग को भी प्राथमिकता दी जाएगी। राष्ट्रीय अनुसंधान प्रणाली के साथ-साथ मालिकाना अनुसंधान के माध्यम से भी जैव-प्रौद्योगिकी, दूर संवेदन प्रौद्योगिकी, कटाई पूर्व एवं कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी, ऊर्जा संरक्षण प्रौद्योगिकी, पर्यावरण संरक्षण प्रौद्योगिकी जैसी उन्नत विधाओं के उपयोग को प्रोत्साहन दिया जाएगा। हमारा प्रयास भारतीय कृषि में प्रौद्योगिकी परिवर्तन के लिए एक सुसंगठित, कुशल एवं परिणामोन्मुखी कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा प्रणाली के निर्माण का होगा।

अनुसंधान और विस्तार प्रणाली की गुणवत्ता और कुशलता में सुधार के लिए अनुसंधान और विस्तार संपर्क मजबूत बनाया जाएगा। मांगचालित उत्पादन प्रणाली के आयोजन के लिए कृषि विस्तार में कृषि विज्ञान केन्द्रों, गैर-सरकारी संगठनों, कृषक संगठनों, सहकारिताओं, निगम क्षेत्र एवं पैरा टैक्नीशियनों की भूमिका को प्रोत्साहन दिया जाएगा। क्षमता निर्माण के माध्यम से मानव संसाधन विकास एवं लोक विस्तारकर्मियों तथा अन्य विस्तारकर्मियों की कार्यकला में सुधार को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।

कृषि में लिंग संबंधी असंतुलन दूर करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। महिलाओं को शक्तिसंपन्न बनाने एवं उनकी आदानों, प्रौद्योगिकी एवं अन्य कृषि संसाधनों तक पहुंच में सुधार तथा उनमें क्षमता निर्माण के लिए उपयुक्त संरचनात्मक, कार्यात्मक एवं संस्थागत उपाय किए जाएंगे।

आदान प्रबंध

सरकार का प्रयास उच्च गुणवत्ता वाले आदानों, यानी बीज, उर्वरक, पौध-संरक्षण रसायन, जैव-कृमिनाशी, कृषि मशीनरी एवं ऋण को उचित दरों पर तथा समय से एवं पर्याप्त मात्रा में किसानों तक पहुंचाना होगा। मृदा परीक्षण एवं उर्वरकों तथा बीजों का गुणवत्ता परीक्षण सुनिश्चित किया जाएगा तथा मिलावटी आदानों की आपूर्ति पर रोक लगाई जाएगी।

उन्नत किस्म के बीजों एवं रोपण सामग्री के उत्पादन एवं वितरण तथा निजी क्षेत्र के सहयोग से बीज प्रमाणन प्रणाली के सुदृढ़ीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। निवेश और जनशक्ति के कुशल उपयोग के लिए राष्ट्रीय बीज निगम और भारतीय राज्य फार्म निगम का पुनर्गठन किया जाएगा।

ट्रिप्स समझौते के अंतर्गत भारत की जिम्मेदारियों के अनुसार विशेषकर निजी क्षेत्र में नई किस्मों के प्रजनन तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए अद्वितीय विधायन के माध्यम से पौध किस्मों को संरक्षण दिया जाएगा। किसानों को वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए संरक्षित किस्मों के ब्रांडयुक्त बीजों को छोड़कर अपनी कृषि में बचाए हुए बीजों की बचत, उपयोग, विनिमय, लेन-देन एवं बिक्री के अपने पारंपरिक अधिकार अनुमन्य होंगे। नई किस्मों के विकास के लिए मालिकाना किस्मों पर अनुसंधान करने संबंधी शोधार्थियों के हितों की सुरक्षा की जाएगी।

पौध-संरक्षण के अंतर्गत निर्देशक तत्व के रूप में रासायनिक कृमिनाशियों के अंधाधुंध एवं अनुचित उपयोग को कम करने के उद्देश्य से समेकित कृमि प्रबंध एवं जैव-कारकों का उपयोग होगा। फसल उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ कृषि को अधिक कुशल एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाने एवं श्रम कम करने के लिए वर्षासिंचित कृषि के विशेष संदर्भ में उपयुक्त प्रौद्योगिकी के माध्यम से चुने हुए एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि यंत्रीकरण को प्रोत्साहन दिया जाएगा।

प्रोत्साहन

सरकार घरेलू कर-संरचना को उपयुक्त बनाने के माध्यम से निर्माण क्षेत्र के साथ व्यापार शर्तों में सुधार तथा बाह्य एवं आंतरिक मंडी सुधार, कृषि के लिए प्रोत्साहन व्यवस्था में विसंगतियों को दूर करके किसानों के अपने निवेश के निर्माण तथा पूंजी निर्माण में वृद्धि हेतु अनुकूल आर्थिक वातावरण के सृजन का प्रयास करेगी।

कृषि पर विश्व व्यापार संगठन समझौते के अनुसार आयातों पर परिमाणात्मक प्रतिबंधों को हटाए जाने के बाद निर्यात बढ़ाने के लिए विश्व बाजार में होने वाली मूल्य अस्थिरता के प्रतिकूल प्रभाव से उत्पादकों को संरक्षित करने के लिए सामग्रीवार रणनीतियों एवं व्यवस्थाओं का प्रतिपादन किया जाएगा। बागवानी उत्पादों और समुद्री उत्पादों के निर्यात पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। निर्यात उपार्जन से किसानों को संवर्धित आय मुहैया कराने की दृष्टि से कृषि उत्पाद विविधता तथा मूल्य संयोजन की दोहरी दीर्घकालिक नीति बनाई जाएगी। निर्यात व आयात दोनों के संगरोध पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाएगा ताकि भारतीय कृषि को जहरीले कीटों तथा रोगों के प्रभाव से बचाया जा सके।

घरेलू कृषि संगरोधात्मक प्रतिबंधों को हटाने के संदर्भ में किसानों के हितों की रक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों की लगातार मानिटरिंग की जाएगी तथा उचित टैरिफ संरक्षण दिया जाएगा। कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाली निर्मित वस्तुओं पर आयात शुल्क तर्कसंगत बनाया जाएगा। मंडी

क्षेत्र को उदार बनाया जाएगा और कृषि आय वृद्धि में व्यवधान डालने वाले सभी नियंत्रणों और शर्तों की समीक्षा की जाएगी और उन्हें समाप्त किया जाएगा।

खाद्यान्नों तथा अन्य वाणिज्यिक फसलों पर कर ढांचे की समीक्षा की जाएगी तथा इसे युक्तिसंगत बनाया जाएगा। इस तरह से फार्म मशीनरी तथा उपकरणों, उर्वरकों आदि जैसी सामग्री, जिन्हें कृषि उत्पादन, फसल कटाई उपरांत भंडारण और प्रसंस्करण में प्रयोग किया जाता है, पर उत्पाद कर की समीक्षा की जाएगी।

कृषि निवेश

कृषि क्षेत्र में निवेश के संबंध में सार्वजनिक क्षेत्र की ह्रासमान प्रवृत्ति रही है। क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करने हेतु कृषि एवं ग्रामीण विकास की सहायक अवसंरचना के त्वरित विकास के लिए विशेष रूप से गांवों के संबंध में सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा दिया जाएगा। आदानों के उचित तथा पारदर्शी मूल्यनिर्धारण द्वारा नीतियों को युक्तिसंगत बनाने के लिए एक नियतकालिक नीति प्रतिपादित की जाएगी ताकि कृषि एवं आदानों के प्रयोग में दक्षता संवर्धन हेतु संसाधनों का सृजन किया जा सके।

ग्रामीण विकास के लिए प्रथम प्रयास के रूप में गांवों में विद्युतीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। विद्युत आपूर्ति की गुणवत्ता और उपलब्धता में सुधार किया जाएगा तथा ऊर्जा के नए पुनरुज्जीवन योग्य संसाधनों के उपयोग को भी प्रोत्साहित किया जाएगा।

सिंचाई क्षमता के सृजन तथा उपयोग के बीच की खाईं को पाटते हुए सभी चालू परियोजनाओं को पूरा करने, सिंचाई अवसंरचना के पुनरुद्धार तथा आधुनिकीकरण, राष्ट्रीय जल संसाधनों के संवर्धन एवं प्रबंधन की समेकित योजना के विकास एवं कार्यान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

फसलोपरांत हानियों को कम करने तथा किसानों हेतु बेहतर मूल्य सुनिश्चित करने की दृष्टि से विपणन अवसंरचना, परिरक्षण, भंडारण और परिवहन तकनीकों के विकास पर जोर दिया जाएगा। पंचायती राज संस्थाओं के सीधे नियंत्रणाधीन साप्ताहिक मंडियों (हाटों) को उन्नत और सुदृढ़ बनाया जाएगा। बाजार दक्षता के उन्नयन और प्रसार पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

अवशिष्ट, विशेष रूप से बागवानी उत्पाद के अवशिष्टों को कम करने तथा मूल्य संवर्धन में वृद्धि के लिए उत्पादन क्षेत्रों में कृषि प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना की जाएगी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आफ फार्म रोजगार सृजन को प्रोत्साहित दिया जाएगा। कृषि प्रसंस्करण उद्योग के संवर्धन के लिए उत्पादक सहकारी समितियों तथा समष्टि क्षेत्र के बीच सहयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा।

संस्थागत संरचना

छोटे व सीमांत किसानों को प्रमुखता देना भारतीय कृषि की विशेषता है। संस्थागत सुधार इस प्रकार किए जाएंगे जिससे इनकी ऊर्जा का प्रचालन बेहतर उत्पादकता और उत्पादन प्राप्ति के लिए किया जा सके। ग्रामीण विकास तथा भूमि सुधार हेतु निम्नलिखित क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

- उत्तर-पश्चिमी राज्यों के प्रतिमान पर पूरे देश में जोतों का समेकन;
- निर्धारित सीमा से अधिक और परती भूमि का भूमिहीन किसानों, बेराजगार युवकों में प्रारंभिक पूंजी के साथ पुनर्वितरण;
- पट्टेदारों तथा फसल हिस्सेदारों के अधिकारों को मान्यता देने के लिए पट्टेदारी सुधार;
- खेती व कृषि व्यापार हेतु निजी भूमि पट्टे पर देने के वास्ते वैधानिक प्रावधान करके जोतों के आकार में वृद्धि करने की दृष्टि से पट्टा बाजारों का विकास;
- भूमि अभिलेखों का अद्यतन सुधार, कंप्यूटरीकरण तथा किसानों को भूमि पास-बुक जारी करना;
- भूमि में महिला अधिकारों को मान्यता देना।

पंचायती राज संस्थाओं, स्वैच्छिक समूहों, सामाजिक गतिविधियों तथा सामुदायिक प्रणेताओं की मदद से भूमि-सुधारों के कार्यान्वयन में ग्रामीण गरीबों को अधिक शामिल किया जाएगा।

फसल, विशेष रूप से तिलहन, कपास तथा बागवानी फसलों के उत्पादन के लिए त्वरित प्रौद्योगिकी अंतरण, पूंजी अंतर्वाह तथा बीमाकृत बाजारों की अनुमति के वास्ते संविदा खेती तथा पट्टेदारी व्यवस्था के माध्यम से निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाई जाएगी।

ग्रामीण तथा कृषि ऋण का प्रगामी सांस्थानीकरण जारी रहेगा जिससे किसानों को समय पर और पर्याप्त मात्रा में ऋण मुहैया कराया जा सके। बचतों, निवेशों तथा जोखिम प्रबंधन के संवर्धन के लिए ग्रामीण ऋण संस्थानों के कार्यों को और तेज किया जाएगा। कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों के वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ऋण प्राथमिकता क्षेत्र में विकारों को समाप्त करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। ऋण वितरण में साम्यता सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाएंगे।

गत वर्षों में कर्मठता से सृजित सहकारी क्षेत्र द्वारा कृषि को मूल सहायता दी गई है। उद्यम के सहकारी रूप को बढ़ावा देने के लिए सरकार सक्रिय सहायता देगी तथा यह भी सुनिश्चित करेगी कि उन्हें और अधिक स्वायत्तता एवं प्रचालनात्मक स्वतंत्रता मिले ताकि वे अपने कार्यकलापों में सुधार कर सकें।

जोखिम प्रबंध

तकनीकी एवं आर्थिक विकास के बावजूद प्राकृतिक आपदाओं एवं मूल्य अस्थिरता के कारण किसानों की स्थिति असंतोषजनक बनी हुई है। राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना, जिसमें देश के सभी किसानों एवं फसलों को शामिल किया जाता है एवं जिसमें प्राकृतिक आपदाओं के कारण होने वाले वित्तीय संकट से किसानों को बचाने एवं कृषि को आर्थिक रूप से व्यावहार्य बनाने का प्रावधान है, को अधिक किसानोन्मुखी एवं प्रभावी बनाया जाएगा।

कृषि में जोखिम कम करने, सूखा और बाढ़ का सामना करने में भारतीय कृषि को समर्थ बनाने के लिए बाढ़-प्रवण खेती को बाढ़ से बचाने और वर्षा सिंचित कृषि को सूखे से बचाने के प्रयास किए जाएंगे।

केन्द्र सरकार मुख्य कृषि जिंसों हेतु न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति के माध्यम से कृषि उत्पादों के लिए लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करने की अपनी जिम्मेदारी निभाना जारी रखेगी। विभिन्न जिंसों के समर्थन मूल्य का निर्धारण करते समय खाद्य, पोषण एवं देश की अन्य घरेलू निर्यात आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाएगा। कृषि क्षेत्र के लिए अनुकूल आर्थिक वातावरण तैयार करने और ग्रामीण एवं शहरी आय के बीच संतुलन बनाए रखने हेतु मूल्य संरचना और व्यापार प्रणाली की निरंतर समीक्षा की जाएगी। किसानों द्वारा मजबूरन बिक्री रोकने के लिए घरेलू बाजार मूल्यों की कड़ी निगरानी की जाएगी। विपणन कार्यों में लगे सार्वजनिक एवं सहकारी अभिकरणों को सुदृढ़ किया जाएगा।

प्रबंधन सुधार

नीतिगत प्रयासों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कृषि प्रबंधन में व्यापक सुधार करना होगा। केन्द्र सरकार की भूमिका क्षेत्रविशिष्ट कार्य-योजनाओं के माध्यम से राज्य सरकारों के प्रयासों को पूर्ण करने में सहायता करने की होगी। केन्द्र सरकार योजना केन्द्रित दृष्टिकोण छोड़कर वृहद् प्रबंध दृष्टिकोण अपनाएगी।

सरकार बुआई से प्राथमिक प्रसंस्करण तक फार्म प्रचालन के सभी चरणों के गुणवत्ता पक्ष पर ध्यान देगी। किसानों एवं कृषि प्रसंस्कारकों के बीच गुणवत्ता के बारे में जाग्रति लाई जाएगी। निर्यात संवर्धन के लिए कृषि उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण को प्रोत्साहन दिया जाएगा। कृषि क्षेत्र को विश्व-स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों एवं उपयोगकर्त्ताओं/संभावित उपयोगकर्त्ताओं के बीच विचार-विमर्श की नियमित प्रणाली के माध्यम से कृषि में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाएगा।

अनुमान एवं भविष्यवाणी को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए कृषि क्षेत्र में संबंधित आंकड़ों को सुदृढ़ बनाया जाएगा जिससे नियोजन एवं नीति निर्माण प्रक्रिया में सहायता मिलेगी। जोखिम प्रबंध एवं विकास प्रक्रिया को तेज करने के लिए आंकड़ों के संग्रहण, मिलान, मूल्य संयोजन एवं समुचित स्थानों पर इसके वितरण हेतु दूरसंवेदी एवं सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग एवं इनमें सुधार के प्रयास किए जाएंगे।

भारत सरकार का विश्वास है कि राष्ट्रीय कृषि नीति जनता के सभी वर्गों का समर्थन हासिल करेगी तथा इससे कृषि का दीर्घकालीन विकास, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वावलंबन आधार पर रोजगार सृजन, कृषक समुदाय के जीवन-स्तर में सुधार एवं पर्यावरण संरक्षण होगा तथा यह एक उदीयमान राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के निर्माण की वाहक होगी। ❑

VAID'S ICS Delhi

Our Toppers in State Services 1999

2nd Rank UPPCS '99
Sameer Kumar Verma

4th Rank BPSC '99
Chandan Kumar

Ist Rank Topper PCS
(Nagaland) '99 Ms. Alovi

You thought we produced only IAS?

48 final selections in IAS '99
64 final selections in UPPCS '99

Mains, Prelims, Mains-cum-Prelims & Complete Course Batches

FOR CURRENT SCHEDULE CONTACT PERSONALLY

GS, ESSAY, HISTORY, GEOGRAPHY, PUB. ADMN., HINDI LITT., PHILOSOPHY, POL. SC., ANTHRO., SOCIOLOGY, PSYCHOLOGY, PHYSICS, MATHS, ZOOLOGY & BOTANY

For Information Bulletin send Rs. 50/- by DD/MO in favour of VAID'S ICS, Delhi Head Office Address only.

Postal Courses Available

PRELIMS

GS, GEOGRAPHY, INDIAN HISTORY, PUB. ADMN., PHILOSOPHY SOCIOLOGY & PHYSICS

MAINS

GS, HISTORY, ANTHROPOLOGY, GEOGRAPHY, PUBLIC ADMINISTRATION, POLITICAL SCIENCE, PSYCHOLOGY, PHILOSOPHY, HINDI LITT. & PHYSICS

VAID'S ICS

H.O. : AG-603, SHALIMAR BAGH, DELHI-110088
PH.:7471544, 7477317

South Delhi Chapter : 58A/2, Kalu Sarai, Sarv Priya Vihar, New Delhi-110016. Ph. 6533839
Lucknow Chapter : B-36, Sector C, Aliganj Lucknow, U.P. Ph.: 326249
Indore Chapter : 39, Vardhman Palace, Itwaria Bazar (Near Kanch Mandir), Indore Ph.: 272635, 9827015411, 9827096801

HOSTEL FACILITY AVAILABLE

राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार संगठन

बिबेक देबराय

देश की दो-तिहाई आबादी चूंकि कृषि क्षेत्र से रोजी-रोटी कमाती है, सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर बढ़ाने, गरीबी कम करने और रोजगार जुटाने के लिए कृषि सुधार आवश्यक है। यह न्यूनतम प्रतिबद्धता है। विश्व व्यापार संगठन हमसे जो अपेक्षा करता है, हमें उससे कहीं अधिक कर दिखाना होगा।

विषय की दृष्टि से 1986 से 1994 तक केउरूग्वे दौर के समझौतों को तीन शीर्षकों में बांटा जा सकता है। पहला, बाजार तक पहुंच के समझौते; दूसरा, बहुपक्षीय नियमों से जुड़े समझौते (सब्सिडियां और प्रति- संतुलनकारी उपाय, विवादों का समाधान, डम्पिंग विरोधी उपाय और संरक्षण इसके कुछ उदाहरण हैं); तीसरा, नए क्षेत्रों से जुड़े समझौते (व्यापार से सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार, व्यापार से सम्बद्ध पूंजी निवेश उपाय और बौद्धिक सम्पदा अधिकार इसके उदाहरण हैं)। उरूग्वे दौर के बाद के मुद्दे जैसे श्रम और पर्यावरण मानक, स्पर्धा नीति और इलैक्ट्रानिक वाणिज्य नवीनतम मामले हैं।

पीछे नजर डालें तो इनमें से कुछ समझौतों पर दृष्टिकोण में बदलाव आया है। जब उरूग्वे दौर की बातचीत चल रही थी, तब कम से कम उसके आरंभिक चरण में संभवत: यह धारणा बनी हुई थी कि भारत को बाजार में प्रवेश के मामलों में लाभ होगा और नए मामलों में नुकसान होगा। उरूग्वे दौर के समझौते 1 जनवरी 1995 को लागू हुए। पांच वर्ष बाद यह पूछना ठीक होगा कि भारत को कृषि उदारीकरण से क्या लाभ हुआ है। अगर नहीं, तो भारत को क्या मिला और दिक्कतें दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है।

लेकिन इससे पहले विश्व व्यापार संगठन के उन चार समझौतों पर ध्यान देना होगा जो कृषि पर असर डालते हैं। पहला, कृषि का मूल पाठ; दूसरा, सफाई और वनस्पति सफाई (एच पी एस) पर समझौता; तीसरा, बौद्धिक संपदा अधिकारों, विशेष रूप से सूक्ष्म जीवों और पौध तथा बीज की किस्मों के बारे में समझौते, जो कृषि के लिए महत्व रखते हैं; चौथा, उर्वरकों और उर्वरक नीति को प्रभावित करने वाले औद्योगिक शुल्क समझौते, विशेष रूप से मात्रा अंकुशों की क्रमिक समाप्ति के बाद के समझौते। हालांकि आखिरी दो समझौते निश्चित रूप से संबद्ध हैं तो भी उनसे बिलकुल अलग तरह के मुद्दे जुड़े हैं इसलिए हम अपने विचार पहले दो समझौतों तक सीमित रखेंगे।

कृषि के मूल पाठ की रूपरेखा काफी हद तक ज्ञात है। मोटे तौर पर इसमें सीमा संबंधी उपाय और आंतरिक नीति नियम शामिल हैं। सीमा उपायों में मात्रात्मक अंकुशों को शुल्कों में बदलना होगा और ये शुल्क विकसित देशों को अगले छह वर्षों में 36 प्रतिशत तक नीचे लाने होंगे, तथा विकासशील देशों को अगले 10 वर्षों में 24 प्रतिशत तक कम करने होंगे। निर्यात सब्सिडियां

परिमाण और बजटीय अवधि दोनों क्षेत्रों में कम करनी होगी। परिमाण की दृष्टि से विकसित देशों को 21 प्रतिशत और विकासशील देशों को 16 प्रतिशत सब्सिडियां कम करनी होंगी। उधर बजटीय दृष्टि से विकसित देशों को 36 प्रतिशत और विकासशील देशों को 24 प्रतिशत सब्सिडियां कम करनी होंगी। जहां तक आंतरिक उपायों का संबंध है, कुल समर्थन आकलन (एग्रीगेट मैजरमेंट आफ सपोर्ट-ए एम एस) की एक प्रणाली है जिसमें विकासशील देशों के लिए कुल दहलीजी समर्थन स्तर 10 प्रतिशत है और विकसित देशों के लिए पांच प्रतिशत। अधिक सहायता राशि पर विकसित देशों को आधार-स्तर पर कुल समर्थन 20 प्रतिशत और विकासशील देशों को $13^{1}/_{3}$ प्रतिशत घटाना होगा।

क्रियान्वयन समस्याएं

एक जनवरी 1995 को उरूग्वे दौर के समझौतों के लागू होने के पांच या अधिक वर्ष बाद आज कृषि क्षेत्र के उदारीकरण उपायों के प्रति असंतोष होना स्वाभाविक है। अवधारणा के स्तर पर तीन प्रकार की समस्याएं हैं। पहली, समझौते लागू नहीं किए गए हैं बल्कि उनका उल्लंघन हुआ है। दूसरी, समझौतों की अवहेलना की गई है, अर्थात कुछ कामों से समझौते की भावना का उल्लंघन हुआ है, न कि कानून का। तीसरा, कुछ मुद्दे वर्तमान समझौतों से हटकर भी हैं। अधिकतर समस्याओं का संबंध अंतिम दो वर्ग के समझौतों से है। अगर दो तथ्यों का ध्यान रखा जाए तो इस तरह की क्रियान्वयन समस्याएं अप्रत्याशित नहीं हैं। पहली बात तो यह है कि उरूग्वे दौर कृषि क्षेत्र में बहुपक्षीय नियम लागू करने का पहला प्रयास था। दूसरी बात यह कि दिसंबर 1993 के पैकेज में प्रस्तावित उदारीकरण डंकल प्रारूप के विपरीत है और अपूर्ण है। डंकल प्रारूप कृषि को कहीं अधिक उदारीकृत कर देता। कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं:—

- हरे बक्से और नीले बक्से से जुड़ी कुछ नीतियां ए एम एस से मुक्त हैं। हरे बक्से या नीले बक्से में सब्सिडियों के कृत्रिम हस्तांतरण में विकृतियां हैं;
- 1986 से 1988 तक की आधार समयावधि में ए एम एस स्तर ऊंचा था। नतीजतन कटौती उच्च ए एम एस पर की गई है और निर्धारित कटौतियों के बाद भी कुछ देशों में कुल ए एम एस का स्तर ऊंचा बना रहेगा। यह इस दलील से सम्बद्ध मुद्दा है कि समग्र समर्थन की कोई सीमा तय नहीं की गई है।
- निर्यात सब्सिडी प्रतिबद्धताएं अक्सर समग्र रूप में व्यक्त की जाती हैं। इससे सब्सिडियां कायम रखने और बढ़ाने में लचीलापन बना रहता है।
- शुल्क-दरों के कोटों का आबंटन (टी आर क्यूज) अक्सर मनमाना होता है और इसमें पारदर्शिता नहीं बरती जाती। जब तक शुल्क दर कोटे बने रहेंगे, व्यवहार रूप में मात्रात्मक अंकुश लागू रहेंगे।
- मात्रात्मक अंकुशों का स्थान शुल्क दरों के ले लेने पर वास्तविक शुल्क मात्रा अंकुशों के समकक्ष समझे जाने वाले शुल्कों से अधिक बैठेगी।
- एस पी एस समझौते के अंतर्गत संरक्षण की बात उठती है क्योंकि समझौते में ऐसे मानकों को मंजूरी दी गई है जो अंतर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत मानदंडों से ऊंचे होते हैं, बशर्ते कि इनका पर्याप्त वैज्ञानिक आधार हो। कभी-कभी डंपिंग विरोधी और सब्सिडी विरोधी जांच-पड़ताल के माध्यम से भी संरक्षण का प्रश्न उठाया जाता है।
- राज्य व्यापार, सरकारी खरीद और सरकारी एकाधिकार को पर्याप्त रूप से नियंत्रित नहीं किया जाता। विश्व

भारत की बातचीत को दो दृष्टिकोणों से देखा जाना चाहिए। एक तो यह कि भारत को क्या करना है और दूसरा यह कि अन्य देशों को क्या करना है। भारत पर लागू नियमों से जुड़े मुद्दे काफी आसान हैं। सीमा उपायों की समस्याएं बहुत अधिक नहीं हैं क्योंकि अधिकतर कृषि वस्तुओं की बंधी दरें 100 और 150 प्रतिशत के बीच रहती हैं। कुछ वस्तुओं की दरें 300 प्रतिशत तक चली जाती हैं।

बाजारों में व्याप्त कमियों के कारण स्पर्धा नीति भी एक मुद्दा बन गई है।

भारतीय वार्ताएं

भारत की बातचीत को दो दृष्टिकोणों से देखा जाना चाहिए। एक तो यह कि भारत को क्या करना है और दूसरा यह कि अन्य देशों को क्या करना है।

भारत पर लागू नियमों से जुड़े मुद्दे काफी आसान हैं। सीमा उपायों की समस्याएं बहुत अधिक नहीं हैं क्योंकि अधिकतर कृषि वस्तुओं की बंधी दरें 100 और 150 प्रतिशत के बीच रहती हैं। कुछ वस्तुओं की दरें 300 प्रतिशत तक चली जाती हैं। यह माना जा सकता है कि अशोक गुलाटी और अनिल शर्मा जैसे कृषि अर्थशास्त्रियों का अनुभवपरक कार्य काफी संतुलित है। उससे प्रमाणित होता है कि कुछ वस्तुओं को छोड़ भारत के कृषि उत्पाद मूल्य की दृष्टि से स्पर्धात्मक है।

अपूर्णता के बावजूद भी चूंकि उदारीकरण से विश्व मूल्यों में वृद्धि होती है, भारत में कृषि उत्पाद मूल्य की दृष्टि से अधिकाधिक स्पर्धात्मक होते जाएंगे, ऐसी संभावना है। नतीजतन आयात शुल्क शून्य करने के बावजूद भारत में कृषि उत्पादों के आयात की बाढ़ आ जाने की आशंकाएं वास्तविकता से परे हैं। आयात शुल्क शत-प्रतिशत होने पर तो इस तर्क को और बल मिलेगा। यह मुद्दा कुछ अधिक महत्वपूर्ण बन गया है क्योंकि भारत की पहुंच अनुच्छेद-18 बी तक नहीं है और निषिद्ध तथा प्रतिबंधित वस्तुओं की एक छोटी सूची को छोड़ प्रत्येक वस्तु एक अप्रैल, 2001 से खुले आम लाइसेंस के दायरे में आ जाएगी। बहुत-सी वस्तुएं जिन पर काफी अर्से से मात्रात्मक प्रतिबंध लगे हैं, कृषि उत्पाद हैं जिन्हें उपभोक्ता वस्तुओं की श्रेणी में रख दिया गया है। इस समय भारत पर उपभोक्ता वस्तुओं पर बंधे शुल्क की प्रतिबद्धताएं नहीं हैं। औद्योगिक उत्पादों पर बंधी दरें या तो 25 प्रतिशत हैं या 40 प्रतिशत। सहस्राब्दी के अंत तक बंधी दर प्रतिबद्धताओं के दायरे में वे उत्पाद भी आ जाएंगे जो इस समय उसके बाहर हैं, इनमें उपभोक्ता वस्तुएं भी शामिल हैं। ऐसे समय जब औद्योगिक उत्पादों पर अधिकतम आयात शुल्क 40 प्रतिशत है, कृषि उत्पादों पर 40 प्रतिशत से अधिक आयात शुल्क लगाकर विकृतियां पैदा करने का कोई कारण नहीं है। इसलिए कृषि उत्पादों पर 40 प्रतिशत का अधिकतम शुल्क लगाना तर्कसंगत है। उत्पादों पर यह मानकर कोई शुल्क नहीं लगाया गया कि इन पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगे होंगे। यह स्थिति उरूग्वे दौर से ही नहीं, उससे कई वर्ष पहले से चली आ रही है। स्वाभाविक है इस स्थिति पर सीमा शुल्क और व्यापार के आम समझौते के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत फिर से विचार करना होगा। अब शुल्क दर कोटे के ढंग की प्रणाली थोप दी गई है। अन्य देशों में इस प्रणाली को चुनौती देना और भारत में उन्हें बनाए रखना तार्किक दृष्टि से ठीक नहीं है। जो हो, इस समय शुल्क दर कोटा लागू है। इस प्रक्रिया में अनुच्छेद 28 के अंतर्गत व्यापारिक साझेदारों को मुआवजा देना होगा। कुछ मुआवजा दिया भी गया होगा लेकिन इसकी जानकारी अब तक सार्वजनिक नहीं की गई है। एक ऐसी ही समस्या पांच प्रतिशत बंधे शुल्क वाले डी ए पी उर्वरक के संबंध में मौजूद है लेकिन अनुच्छेद 28 के अंतर्गत इस पर अभी बातचीत शुरू नहीं हुई है।

कृषि उत्पादों पर 40 प्रतिशत का अधिकतम शुल्क लगाना तर्कसंगत है। उत्पादों पर यह मानकर कोई शुल्क नहीं लगाया गया कि इन पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगे होंगे। यह स्थिति उरूग्वे दौर से ही नहीं, उससे कई वर्ष पहले से चली आ रही है। स्वाभाविक है इस स्थिति पर सीमा शुल्क और व्यापार के आम समझौते के अनुच्छेद 28 के अंतर्गत फिर से विचार करना होगा।

जहां तक आंतरिक नियमों का संबंध है, कुल समर्थन की राशि साल-दर-साल बदलती रहती है, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि यह राशि दस प्रतिशत से कम रहती है। परिणामस्वरूप आंतरिक कृषि सुधार विश्व व्यापार संगठन के कारण नहीं होते। कुल समर्थन का

हिसाब-किताब लगाने में कुछ कार्यविधि मामलों को बाद की बातचीत में स्पष्ट करना जरूरी है। ए एम एस का प्रणाली विज्ञान बाहरी-संदर्भ मूल्य और आंतरिक प्रशासनिक मूल्य के बीच के अंतर पर आधारित होता है। साथ ही यह उस उत्पादन मात्रा के गुणा पर आधारित होगा जो समर्थन की पात्र हो। आंतरिक मुद्रास्फीति या मुद्रा के मूल्य ह्रास को साफ शब्दों में स्वीकारा नहीं गया है। क्या स्थानीय मुद्रा को अमेरिकी डालरों में बदलने के लिए वर्तमान विनिमय दरों को काम में लाया जाएगा? उत्पाद आधारित सब्सिडियों की कुल राशि भी स्पष्ट नहीं है। क्या कोई उत्पाद-आधारित नकारात्मक सब्सिडियों का सकारात्मक कुल समर्थन से मोल-तोल कर सकेगा? समर्थन का कुल हिसाब लगाने पर क्या प्रशासित मूल्य सारे बाजार पर या वास्तव में खरीदी गई वस्तु की मात्रा पर लागू किया जाएगा? गरीबों को या कम आय वाले किसानों को दी गई सब्सिडियां कुल समर्थन के आकलन से बाहर रखी जाती हैं। तब इन्हें परिभाषित कैसे किया जाएगा?

कृषि वार्ता के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में ज्यादातर खंडित मानसिकता का पुट रहा है। उदारीकरण से भारत को कोई लाभ होगा या पी एल 480 का हौआ अब भी सताता रहेगा। अगर यह स्वीकार कर लिया जाए कि भारत को सार्वभौम कृषि उदारीकरण से लाभ होगा, जैसाकि अध्ययनों ने प्रमाणित किया है, भारत केयरंस समूह के साथ मिल कर बातचीत में अधिक आक्रमक रुख अपना सकता है। तब भारत दलील दे सकता है कि कुल समर्थन से मुक्त नीले और हरे बक्से की नीतियों को अनुशासित किया जाए। कुल समर्थन की सीमा भी निश्चित की जाए और न्यूनतम बाजार प्रवेश प्रतिबद्धता को कुल समर्थन के वास्तविक स्तर से जोड़ा जाए। यह दलील दी जा सकती है कि निर्यात सब्सिडी नियम अति सूक्ष्म स्तर जैसे आठ अंक पर लागू किए जाने चाहिए और शुल्क दर कोटे निषिद्ध किए जाने चाहिए। कृषि समझौते में एक विशेष संरक्षण धारा है जिसका अभी भारत उपयोग नहीं कर रहा है क्योंकि विशेष संरक्षण धारा का उपयोग शुल्कीकरण प्रक्रिया से जुड़ा है। शायद सफलता की बहुत आशा के बिना यह दलील दी जा सकती है कि विशेष संरक्षण धारा रद्द कर दी जानी चाहिए। इस धारा में कहा गया है कि अतिरिक्त संरक्षणों के लिए लगाया गया शुल्क उस समय लागू वास्तविक आयात शुल्क के एक-तिहाई से अधिक नहीं होना चाहिए।

अंत में पर्यावरण से जुड़े एस पी एस समझौते और उन संबद्ध उपायों का प्रश्न है जो एन टी बी के रूप में काम करते हैं। एस पी एस के सीमित मुद्दे पर यह दलील दी जा सकती है कि वैज्ञानिक मापदंड अधिक यथार्थवादी और कम मनमाने हों। तो भी व्यापार और पर्यावरण के बीच संबंधों का व्यापक मुद्दा शेष रहता है। अपेक्षाकृत कमजोर देशों को द्विपक्षीय वार्ता के मुकाबले मजबूत बहुपक्षीय नियमों को तरजीह देनी चाहिए। बहुपक्षीय समझौतों के अभाव में विकसित देशों द्वारा एकतरफा कार्रवाई किया जाना संभव हो सका है। इसके विरोध में एस पी एस और टी बी टी समझौते पूरी तरह त्रुटिहीन नहीं है, यह स्वीकार करते हुए क्या भारत के लिए यह बेहतर होता कि कोई बहुपक्षीय समझौते हो ही नहीं? यह वास्तव में वाद-विवाद का सवाल बनाया जाना चाहिए। व्यापार और पर्यावरण के बीच संबंधों की बात झींगा-कछुआ विवाद के रूप में हमारे सामने है। इसलिए सहस्राब्दी दौर से कोई इन मामलों को बाहर रखने की दलील देगा या उन्हें शामिल करने की दलील देगा ताकि बहुपक्षीय समझौते हो सकें।

आंतरिक सुधार और कृषि नीति

वर्ष 1991 के बाद से जो कुछ हुआ है उसके बावजूद विदेशी उदारीकरण के प्रति हमारी खंडित मन:स्थिति का एक कारण कृषि में आंतरिक सुधारों का अभाव रहा है। कृषि विकास और गरीबी खासकर ग्रामीण गरीबी के बीच संबंध काफी स्पष्ट है। कृषि उत्पादकता का कम स्तर और हरित क्रांति की भौगोलिक और अन्य सीमाएं भी काफी स्पष्ट हैं। विदेशी उदारीकरण हद से हद एक आवश्यक शर्त हो सकता है, जो अपने में पर्याप्त नहीं है। भारत की आंतरिक कृषि को सुधारने के लिए जिस बात की आवश्यकता है, उसकी जानकारी तो कुछ समय से प्राप्त है। समस्या यह

है कि बहुत ही कम सुधारों को वास्तव में लागू किया जा रहा है। प्राथमिकता क्रम में न होते हुए भी एजेंडा में निम्न विषय शामिल हैं:-

- कृषि उत्पादों की अंतर्राज्यीय आवाजाही पर लगे अंकुश हटा लिए जाएं। इनमें से कई का प्रादुर्भाव आवश्यक सामग्री अधिनियम के अंतर्गत जारी आदेशों से हुआ है। मूल्यवर्धित कर की ओर बढ़ा जाए क्योंकि स्थानीय कर भी अंतर्राज्यीय आवाजाही में रुकावट डालते हैं।
- ग्रामीण ऋण व्यवस्था, ग्रामीण बीमा और विस्तार सेवाओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी को अनुमति दी जाए। इससे एक वास्तविक फसल बीमा पद्धति शुरू होगी, न कि वर्तमान कथित फसल बीमा। इससे फलों और सब्जियों की बरबादी कम होगी और बिचौलिए खत्म होंगे जिससे वितरण की वर्तमान बेतहाशा लंबी श्रृंखलाएं कम हो जाएंगी। बिचौलियों के न रहने से किसान को बेहतर मूल्य मिलेगा और उधर उपभोक्ता को भी ऊंचे दाम नहीं देने पड़ेंगे।
- वायदा व्यापार शुरू किया जाए।
- भूमि अधिकतम सीमा कानून मे संशोधन किया जाए और ठेके पर खेती की सुविधा हो।
- कृषि में सरकारी व्यय के कुशल प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए। इसका मतलब है बीजों, उर्वरकों, बिजली, पानी या ऋण पर निविष्ट सब्सिडियां खत्म कर दी जाएं। प्रयोक्ताओं से समुचित शुल्कों की वसूली विकेंद्रीकरण और स्थानीय प्रयोक्ता संस्थाओं से सुनिश्चित कराई जा सकती हैं। अगर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का पुनर्गठन कर दिया जाए और उसके स्थान पर खाद्य स्टाम्प पद्धति लागू कर दी जाए या अगर सरकारी खरीद निजी क्षेत्र के लिए खोल दी जाए तो भारतीय खाद्य निगम की अकुशलता के कारण होने वाले खर्च में बचत हो सकती है। सब्सिडियां समुचित लक्ष्यों के लिए निर्धारित कर उत्पादों के मूल्य भी बढ़ाए जा सकते हैं। कोई वजह नहीं कि लाड़ले शहरी-मध्यम वर्ग को सब्सिडी युक्त वस्तुएं दी जाएं। इससे उपलब्ध संसाधन ग्रामीण बुनियादी ढांचे के सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं। अक्सर यह निजी क्षेत्र के व्यय में वृद्धि का आवश्यक उत्प्रेरक बन जाता है।

जनसंख्या के दो-तिहाई हिस्से के ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार पर लगे होने के कारण कृषि सुधारों का होना आवश्यक है। तभी सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर बढ़ेगी, गरीबी कम होगी और रोजगार के नए अवसर जुटाए जा सकेंगे। इसके लिए मानसिकता को बदलना होगा। जरूरी नहीं कि हम उतना ही करें जितना विश्व व्यापार संगठन हम से करवाना चाहता है। वह तो न्यूनतम प्रतिबद्धता है।

विकेंद्रीकरण ग्रामीण बुनियादी ढांचे को बनाए रखने में भी सहायक होता है। कभी-कभी ग्रामीण बुनियादी ढांचे को बनाए रखना बुनियादी ढांचे को बनाने से अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है लेकिन अक्सर इस तथ्य की अनदेखी कर दी जाती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रूढ़िवाद और आलस्य में डूबी कृषि तथा गतिशील उद्योग के बीच का परंपरागत विभाजन जरूरी नहीं है सही हो। यह विभाजन विकृत नीतियों का परिणाम है। जनसंख्या के दो-तिहाई हिस्से के ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार पर लगे होने के कारण कृषि सुधारों का होना आवश्यक है। तभी सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर बढ़ेगी, गरीबी कम होगी और रोजगार के नए अवसर जुटाए जा सकेंगे। इसके लिए मानसिकता को बदलना होगा। जरूरी नहीं कि हम उतना ही करें जितना विश्व व्यापार संगठन हम से करवाना चाहता है। वह तो न्यूनतम प्रतिबद्धता है। विश्व व्यापार संगठन हमसे जितना चाहता है, हमें उससे कहीं अधिक कर दिखाना है। ❑

(लेखक राजीव गांधी प्रतिष्ठान, नई दिल्ली में राजीव गांधी समसामयिक अध्ययन संस्थान के निदेशक हैं।)

खाद्य सुरक्षा, राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार संगठन

बी. भट्टाचार्य

अनुभवजन्य अनुमानों से पता चलता है कि निकट भविष्य में भारत को विदेशों से काफी खाद्यान्न आयात करना पड़ेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारत जैसे विकासशील देशों को विश्व खाद्य समझौते के अंतर्गत ऐसा 'खाद्य सुरक्षा बाक्स' बनाने पर विचार करना चाहिए जो कटौती की वचनबद्धताओं से मुक्त हो।

खाद्य सुरक्षा क्या है, इस बारे में अनेक परिभाषाएं हैं। इसकी सबसे व्यापक और शायद सबसे स्वीकार्य परिभाषा वह है जो 1996 में रोम में विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन के बाद जारी की गई थी।

"खाद्य सुरक्षा वह स्थिति है जिसमें सब लोगों को अपनी आहार संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हर समय पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो और एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन बिताने के वास्ते अपनी पसंद का ऐसा भोजन प्राप्त करना उनके लिए भौतिक एवं आर्थिक दृष्टि से संभव हो।"

यह परिभाषा खाद्य सुरक्षा के अनेक नाजुक आयामों पर जोर देती है। पहला, अपेक्षित खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति; दूसरा, उसकी आर्थिक दृष्टि से प्राप्ति का संभव होना; और तीसरा, खाद्यान्न आपूर्ति में स्थिरता। वैश्वीकरण के वर्तमान परिदृश्य में इसमें शामिल है विश्व खाद्यान्न मंडियों तक पहुंच और वहां से खाद्यान्न लेने का अधिकार।

विश्व परिदृश्य

खाद्य और कृषि संगठन ने अनुमान लगाया है कि विश्व खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि के बावजूद 1995-97 के दौरान 79 करोड़ लोग विकासशील देशों में और 3.4 करोड़ लोग विकसित और संक्रमण अर्थव्यवस्थाओं से कुपोषण का शिकार थे। इन लोगों में से 75 प्रतिशत एशिया, प्रशांत महासागर क्षेत्र और अफ्रीका में सहारा के नीचे के इलाके में रहते हैं। खाद्यान्न असुरक्षा से पीड़ित सर्वाधिक लोग भारत में हैं और उनकी संख्या 20 करोड़ से अधिक है।

विश्व खाद्य सुरक्षा का दृश्य उत्साहवर्धक नहीं है। संयुक्त राष्ट्र अनुमानों के अनुसार सन 2025 तक विश्व जनसंख्या 8 अरब हो जाएगी और सर्वाधिक वृद्धि एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के देशों में होगी। विश्व खाद्य उत्पादन जो 1960 के बाद दुगने से अधिक हो गया है, प्रमुखतः उत्पादकता वृद्धि से हासिल हुआ है। खेती के रकबे में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। खाद्य और कृषि संगठन अनुमानों के अनुसार लगभग 1.8 अरब हेक्टेयर भूमि खेती के अंतर्गत लाई जा सकती है परंतु कुछ वास्तविक कठिनाइयां हैं। ये हैं: इसमें से कुछ भूमि सुरक्षित वन क्षेत्र में है और इसलिए इसे कृषि भूमि में बदलना पर्यावरण की दृष्टि से वांछनीय नहीं होगा। इनमें से दो-तिहाई से अधिक भूमि में मिट्टी और अन्य प्राकृतिक परिवेश संबंधी समस्याएं हैं। कृषि

उत्पादन में अब तक जो वृद्धि हुई है वह नए किस्म के बीजों, रासायनिक उर्वरकों के अधिक उपयोग और पानी के बेहतर इस्तेमाल से हुई है लेकिन अब इन क्षेत्रों में केवल आंशिक सुधार किया जा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान ने अनुमान लगाया है कि विकासशील देशों में खाद्यान्न कमी या खाद्यान्न अंतर (मांग और आपूर्ति अंतर) अगले 25 वर्षों के भीतर दुगुने से अधिक हो जाएगा।

विश्व व्यापार संगठन

कृषि क्षेत्र को गैट (व्यापार और शुल्क पर आम समझौता) डब्ल्यू.टी.ओ. (विश्व व्यापार संगठन) के अंतर्गत पहली बार 1994 में उरुग्वे दौर की बातचीत के दौरान शामिल किया गया, जब कृषि समझौता हुआ। समझौते का संदर्भ उस दौर की बातचीत के समय की मंत्रीस्तरीय घोषणा से समझा जा सकता है। ''इस बात की प्रबल आवश्यकता थी कि विश्व कृषि व्यापार में अधिक अनुशासन और निश्चितता लाई जाए और संरचनात्मक अधिशेष सहित इस क्षेत्र के प्रतिबंधों और विकृतियों को सुधारने एवं रोकने के प्रयास किए जाएं ताकि विश्व कृषि बाजार असंतुलन, अस्थिरता और अनिश्चितता के माहौल से उबर सके।''

यह विचार मूल रूप से विकसित देशों की वास्तविकताओं से संबद्ध था। अत्यधिक सब्सिडी (सरकारी अनुदान) और परिणामस्वरूप संरचनात्मक अधिशेष विकसित देशों की चिंता का विषय था, और है। इसके विपरीत विकासशील देशों के लिए चिंता का विषय हैं कम उत्पादकता, अपर्याप्त सार्वजनिक और निजी निवेश, तकनीक की अनुपलब्धता और समूची एवं बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा। कृषि समझौते का दीर्घावधि उद्देश्य है उचित और बाजारोन्मुख कृषि व्यापार व्यवस्था की स्थापना और एक सुधार प्रक्रिया की शुरुआत। कृषि समझौते की प्रस्तावना में कहा गया है कि ''सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत सभी सदस्यों के बीच वायदे न्यायपूर्ण ढंग से किए जाने चाहिए और ऐसा करते समय खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण रक्षा सहित गैर-व्यापार चिंताओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए...।''

अधिकांश अध्ययन बताते हैं कि कृषि समझौते से हुई अपेक्षाएं पूरी नहीं हुई हैं। आशा की गई थी कि कृषि समझौते के परिणामस्वरूप विकासशील देशों से विकसित देशों को कृषि जिन्सों का निर्यात बढ़ेगा। वास्तव में उरुग्वे दौर की वार्ता के बाद यूरोपियन यूनियन और जापान को होने वाले निर्यात में आनुपातिक कमी आई है। यह भी आशा की गई थी कि अधिक सब्सिडी देने वाले पश्चिमी (यूरोप के) देशों से कम सब्सिडी देने वाले दक्षिणी देशों को खाद्यान्न का पुनर्वितरण होगा परंतु इस बात के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। कृषि समझौते के अनुच्छेद 20 में पुनर्विचार की व्यवस्था इस प्रकार है:

यह मानते हुए कि समर्थन और रक्षण में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण कमी लाकर मूलभूत सुधारों की ओर अग्रसर होना एक सतत प्रक्रिया है, सदस्य इस बात पर सहमत हैं कि इस प्रक्रिया को जारी रखने के संबंध में बातचीत कार्यान्वयन अवधि की समाप्ति से एक वर्ष पूर्व शुरू की जाएगी और उस समय निम्न बातों पर भी विचार किया जाएगा:

क. कटौती वायदों के क्रियान्वयन का तब तक का अनुभव;

ख. कटौती वायदों का विश्व कृषि व्यापार पर प्रभाव;

ग. गैर-व्यापार चिंताएं, विकासशील सदस्य देशों के साथ विशेष और भेदात्मक बर्ताव और एक उचित एवं बाजारोन्मुख कृषि व्यापार व्यवस्था स्थापित करने का उद्देश्य, और, इस समझौते की प्रस्तावना में उल्लिखित अन्य उद्देश्य और चिंताएं;

घ. उपर्युक्त दीर्घावधि उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु और किन नए वायदों की जरूरत है।

विश्व व्यापार संगठन में अप्रैल 2000 से अनुच्छेद 20 के अंतर्गत बातचीत शुरू हुई। अनेक देशों ने खाद्य सुरक्षा सहित वर्तमान बातचीत के संभावित विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए। स्पष्ट है कि संबंधित देशों के विचारों में व्यापक अंतर है क्योंकि उनके राष्ट्रीय हित अलग-अलग हैं। खाद्यान्न सहित कृषि उत्पादों के बड़े निर्यातक देशों का मत है कि कृषि व्यापार में अधिक उदारीकरण विश्व खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का सर्वोत्तम तरीका है। इसके विपरीत वे देश जिनके यहां बड़ा संरक्षित कृषि क्षेत्र है, खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता के लिए खाद्य सुरक्षा नीति के

अनुसरण पर जोर देते हैं। विश्व खाद्य बाजार में सभी की पहुंच के अनेक आयाम हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंडियों से खाद्यान्न खरीद के लिए आयातक देश के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा होनी चाहिए। तर्क है कि विकसित देशों द्वारा अपने कृषि निर्यात पर अत्यधिक सब्सिडी दिए जाने के कारण बाजार दाम कृत्रिम रूप से कम हो जाते हैं। इससे विकासशील देशों की प्रतियोगितात्मक क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उनकी निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित करने की क्षमता घट जाती है। इसलिए आर्थिक पहुंच के रूप में खाद्य सुरक्षा और विकसित देशों की वर्तमान सब्सिडी व्यवस्था के बीच संबंध है। इस परिप्रेक्ष्य में अगर विकसित देश कृषि सब्सिडी में कमी करें तो विकासशील देशों की खाद्य सुरक्षा में काफी सुधार लाया जा सकता है। तथापि इसका खाद्यान्न आयातक देशों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा क्योंकि सब्सिडी में कमी के फलस्वरूप खाद्यान्न मूल्यों में वृद्धि होगी।

खाद्यान्न आयातक देश कृषि समझौते के फलस्वरूप नुकसान की स्थिति में हो सकते हैं, यह बात समझौते पर बातचीत के समय भी स्वीकार की गई थी। विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों ने कम विकसित और खाद्यान्न आयातक विकासशील देशों पर इन सुधार कार्यक्रमों का प्रतिकूल असर कम करने का फैसला किया। इस फैसले में सदस्य देशों को आदेश दिया गया है कि वे कम विकसित देशों और खाद्यान्न आयातक देशों को अपनी कृषि उत्पादकता और बुनियादी ढांचे में सुधार हेतु तकनीकी और वित्तीय सहायता दें। इसमें यह भी बताया गया कि कम विकसित देशों और खाद्यान्न आयातक देशों को अधिक बुनियादी खाद्य सामग्री अनुदान रूप में दी जा रही है।

वे देश जो निर्यात की अपेक्षा अपनी राष्ट्रीय कृषि रक्षा के लिए अधिक चिंतित हैं, उन विषयों पर जोर देते हैं जो आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। पहले, अंतर्राष्ट्रीय अनाज बाजार में कोई गहराई नहीं है। विश्व बाजार में बेचे गए गेहूं की मात्रा 1989-98 के दौरान औसतन 18.5 प्रतिशत थी। चावल के लिए तत्संवादी आंकड़ा 4.5 प्रतिशत था। अगर इस बात पर विचार किया जाए कि विश्व में खरीदे-बेचे गए खाद्यान्न की मात्रा केवल 20 करोड़ टन है तो विश्व बाजार का सीमित आकार स्पष्ट हो जाता है। कुछ अनुमानों के अनुसार अकेले चीन सन 2020 तक 5.9 करोड़ टन खाद्यान्न आयात कर सकता है। दूसरे, केवल कुछ उत्पादक देश विश्व खाद्य बाजार पर हावी हैं और इनमें से किसी भी देश में फसल खराब होने का विश्व खाद्य बाजार पर असर पड़ सकता है। उदाहरण के लिए 1998 के आंकड़ों के अनुसार चोटी के तीन निर्यातकों का हिस्सा गेहूं में 61 प्रतिशत, चावल में 60 प्रतिशत, जौ में 71 प्रतिशत, मक्के में 89 प्रतिशत और सोयाबीन में 90 प्रतिशत था। तीसरे, ऐतिहासिक दृष्टि से, अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति में खाद्यान्न को हथियार बनाया गया है। आयातित खाद्यान्न पर अत्यधिक निर्भरता से किसी देश की राजनीतिक स्वतंत्रता कम हो सकती है।

राष्ट्रीय कृषि नीति में इस बात पर विचार किया गया है कि देश की भावी खाद्य सुरक्षा किस तरह सुनिश्चित की जाए। भारत ने निश्चित रूप से खाद्यान्न उत्पादन में तेजी से प्रगति की है जिसके परिणामस्वरूप देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है। तथापि निरंतर जनसंख्या वृद्धि और विश्व व्यापार संगठन के सदस्य के रूप में कृषि क्षेत्र को आयात के लिए खोल देने के बाद नीति में नई पहल की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय कृषि नीति

राष्ट्रीय कृषि नीति में इस बात पर विचार किया गया है कि देश की भावी खाद्य सुरक्षा किस तरह सुनिश्चित की जाए। भारत ने निश्चित रूप से खाद्यान्न उत्पादन में तेजी से प्रगति की है जिसके परिणामस्वरूप देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है। तथापि निरंतर जनसंख्या वृद्धि और विश्व व्यापार संगठन के सदस्य के रूप में कृषि क्षेत्र को आयात के लिए खोल देने के बाद नीति में नई पहल की आवश्यकता है। इसकी खासतौर पर इसलिए आवश्यकता है क्योंकि 90 के दशक में कृषि उत्पादन की विकास दर में कमी आई है।

चूंकि राष्ट्रीय कृषि नीति का बुनियादी उद्देश्य कृषि का लाभप्रद विकास और ग्रामीण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता के आधार पर रोजगार के लाभप्रद अवसर पैदा करना है, इसके अंतर्गत प्रस्तावित सभी उपाय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश में अधिक खाद्य सुरक्षा स्थापित करने में योगदान करेंगे। तथापि राष्ट्रीय कृषि नीति ने खाद्य सुरक्षा संबंधी निम्न उपाय खासतौर पर शुरू करने का प्रस्ताव किया है।

- नीति यह स्वीकार करती है कि देश के वानस्पतिक और पशु जैविक संसाधनों के आधार के अपक्षरण और संकुचन से उसकी खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव पड़ा है। इसलिए राष्ट्रीय कृषि नीति में प्रस्ताव है कि देश के जैविक संसाधनों का सर्वेक्षण और मूल्यांकन किया जाए और देशी तथा विदेशी जैविक विविधता के संरक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।
- जैव टेक्नोलाजी के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया जाएगा। नई फसलों की किस्मों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। इसके लिए जैव तकनीक अपनाई जाएगी और विशेष रूप से जैविक परिवर्द्धन पर जोर दिया जाएगा।
- कृषि के परंपरागत ज्ञान का, विशेष रूप से आदिवासी समुदायों के जैविक खेती, पौष्टिक आहार और दवाओं के विकास संबंधी ज्ञान का खाद्यान्न संरक्षण और परिरक्षण में उपयोग किया जाएगा।
- कृषि आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति के संदर्भ में भारतीय कृषि को विश्व स्तर पर प्रतियोगी बनाने के लिए जिंसवार रणनीति बनाई जाएगी और विश्व बाजार में मूल्यों की घटा-बढ़ी से उत्पादकों की रक्षा नीति बनाई जाएगी। अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों पर लगातार निगाह रखी जाएगी और कृषि पदार्थों पर उपयुक्त सीमा शुल्क लगाकर किसानों के हितों की रक्षा की जाएगी।

विकसित खाद्य सुरक्षा स्थिति

जहां तक भारत का संबंध है, कुछ खतरे की घंटियां बज रही हैं। जनसंख्या और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण खाद्यान्न मांग बढ़ रही है लेकिन इसकी आपूर्ति के बारे में संदेह है। खाद्यान्न फसल का क्षेत्रफल 1970-71 के स्तर से आगे नहीं बढ़ा है। देश के अधिकांश भागों में खाद्यान्न उपज दर में भी प्रगति नहीं हुई है। पंजाब और हरियाणा में जमीन की उत्पादकता में गिरावट आनी शुरू हो गई है। इन राज्यों के अधिकांश हिस्सों में भूमिगत जल स्तर तेजी से नीचे जा रहा है। इससे मध्य स्तर पर अधिक पानी चाहने वाले खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट आ सकती है।

इन तथ्यों पर आधारित अनेक अध्ययनों में कहा गया है कि निकट भविष्य में भारत कुल मिलाकर एक खाद्यान्न आयातक देश बन जाएगा। जहां तक गेहूं का संबंध है, भविष्य में कुछ समय तक देश में खपत से अधिक उत्पादन होगा। तालिका-1 और 2 में भारतीय

तालिका-1

मांग और उत्पादन : गेहूं के अनुमान

अनुमानित मूल्य (मिलियन टन में)

वर्ष	उत्पादन	मांग	उत्पादन-मांग
1999-2000	76.02	66.87	9.14
2000-2001	78.53	70.12	8.41
2001-2002	81.07	73.53	7.53
2002-2003	83.67	77.11	6.57
2003-2004	86.36	80.85	5.51
2004-2005	89.13	84.32	4.81

तालिका-2

मांग और उत्पादन : चावल के अनुमान

अनुमानित मूल्य (मिलियन टन में)

वर्ष	उत्पादन	मांग	उत्पादन-मांग
1999-2000	86.95	86.52	0.44
2000-2001	88.48	89.67	-1.19
2001-2002	89.93	92.94	-3.01
2002-2003	91.30	96.33	-5.03
2003-2004	92.59	99.84	-7.25
2004-2005	93.78	101.41	-7.63

स्रोत : भट्टाचार्य और पाल (1998)

विदेश व्यापार संस्थान द्वारा किए गए अध्ययन के परिणाम दिए गए हैं।

कुछ अन्य अध्ययन भी इन्हीं नतीजों पर पहुंचे हैं।

- फिलीपीन्स में आधारित अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान ने भी इसी तरह की चिंता व्यक्त की है। उनके अनुमान के अनुसार भारत को सन 2005 से चावल का आयात शुरू करना पड़ेगा।
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृष्णय्या और जानैया के अनुमान के अनुसार सन 2000 में चावल की मांग 13.2 करोड़ टन तक पहुंच जाएगी।
- आई.एफ.पी.आर.आई.यू. और भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के एक और अनुमान के अनुसार अगर भारत अपनी उत्पादकता निरंतर बढ़ाए तो वह 2020 के बाद खाद्यान्नों का निर्यातक देश रह सकता है।
- नौवीं योजना के अनुमानों के अनुसार 2001-2002 में भारत में गेहूं और चावल की मांग क्रमश: 7.837 और 9.429 करोड़ टन होगी।
- विषय का दीर्घावधि परिदृश्य लेते हुए भल्ला हेजल और केर (1999) के एक अध्ययन में दिखाया गया कि उपभोक्ताओं द्वारा डेरी और पशु प्रोटीन को अधिक पसंद किए जाने के कारण खाद्यान्न की काफी कमी हो सकती है। सबसे अधिक उचित अनुमान के अनुसार सन 2020 तक भारत को 3.6 करोड़ टन अनाज के बीज की कमी हो सकती है।

इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया गया है कि यह विचार कि भारत अपनी जरूरत से ज्यादा अनाज का उत्पादन करता है, गलत धारणा पर आधारित है। इस विचार के अनुसार भारत में खाद्यान्न मांग उसके वर्तमान मूल्यों और जनसंख्या के एक बड़े वर्ग की आय के कारण कम है। खाद्य और कृषि संगठन के एक अनुमान के अनुसार भारत की 20 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या को उचित पोषाहार नहीं मिलता। अगर संपूर्ण जनसंख्या को पर्याप्त पोषक आहार दिया जाए तो खाद्यान्न अधिशेष गायब हो जाएगा।

आंकड़ों से पता चलता है कि 1998 में भारत में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 176.7 किलोग्राम थी और समझा जाता है कि भारत के पास फालतू अनाज है। इसके विपरीत चीन में 1994 में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष खाद्यान्न उपलब्धता लगभग 370 किलोग्राम थी। चीनियों ने इसे अपर्याप्त पाया और भारत सहित अन्य देशों से खाद्यान्न आयात किया।

हाल के अनुमानों के अनुसार गरीब अपनी आय का 40 प्रतिशत अनाज पर खर्च करते हैं और भारत में गरीबों के कल्याण कार्य का सीधा संबंध खाद्यान्न मूल्यों से है। गरीबी अनुपात निस्संदेह ही खाद्यान्न मूल्यों से जुड़ा है। गरीबी अनुपात का कृषि मजदूरों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक से लचीलापन 0.23 प्रतिशत पाया गया है।

हाल के अनुमानों के अनुसार गरीब अपनी आय का 40 प्रतिशत अनाज पर खर्च करते हैं और भारत में गरीबों के कल्याण कार्य का सीधा संबंध खाद्यान्न मूल्यों से है। गरीबी अनुपात निस्संदेह ही खाद्यान्न मूल्यों से जुड़ा है। गरीबी अनुपात का कृषि मजदूरों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक से लचीलापन 0.23 प्रतिशत पाया गया है। इसका अर्थ है कि मूल्य-स्तर में 20 प्रतिशत वृद्धि से गरीब अनुपात 4.6 प्रतिशत बढ़ जाएगा, अगर शुरू में गरीबी अनुपात लगभग 40 प्रतिशत था।

कृषि व्यापार में उदारीकरण से सिद्धस्त रूप में ग्रामीण गरीबी और खाद्यान्न असुरक्षा में कमी आ सकती है। यह अनेक तरह से खाद्यान्न सुरक्षा में योगदान करती है: उत्पादन और खपत की आवश्यकता के अंतर को कम या समाप्त करके; आपूर्ति की परिवर्तनशीलता कम करके; आर्थिक विकास को बढ़ावा देकर; विश्व संसाधनों का बेहतर उपयोग करके; और क्षेत्रों के उन स्थानों पर उत्पादन की अनुमति देकर जहां ऐसा करना आर्थिक दृष्टि से उचित है। अनुभवजन्य अध्ययनों के अनुसार गरीबी के अनुपात और कृषि विकास के बीच शक्तिशाली नकारात्मक सह-संबंध है। यह भी संभावना है कि इससे उत्पादन में वृद्धि हो और परिणामस्वरूप ग्रामीण मजदूरों की मांग और उनकी मजदूरी में वृद्धि हो। इससे अधिक लोगों की पहुंच

के भीतर खाद्यान्न लाकर खाद्य सुरक्षा समस्या में कमी आ सकती है। तथापि भारत में बड़े पैमाने पर फैली बेरोजगारी के कारण मजदूरों की वास्तविक मजदूरी में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो सकती।

इसके अलावा, उत्पादन और खपत के बीच की कमी की खाई को पाटने के लिए व्यापार पर निर्भर रहना खतरे से खाली नहीं है। इन खतरों में शामिल हैं आपूर्ति की अनिश्चितता और विश्व बाजार में मूल्यों की अस्थिरता। खाद्य सुरक्षा के लिए विश्व बाजार में पहुंच के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा होना जरूरी है। निर्यात के क्षेत्र में विकासशील देशों की पिछली उपलब्धियों और विश्व की आर्थिक स्थिति पर विचार करते हुए भारत सहित इनमें से अधिकांश देशों के लिए अपने निर्यात में लगातार वृद्धि करना असंभव कार्य है। इसके अलावा यह भी संभव है कि जब जरूरत हो, अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उचित दर पर खाद्यान्न उपलब्ध न हों। इसका कारण सभी प्रमुख मंडियों में खाद्यान्नों की क़मी और मूल्य वृद्धि हो सकती है। इसके अलावा आयातित खाद्यान्न पर निर्भरता से उन्हें अपने विदेश नीति संबंधी विकल्प बदलने पड़ सकते हैं। भारत के आकार और आवश्यकताओं वाले देश के लिए पर्याप्त खाद्यान्न भंडार होना आवश्यक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि परिचालन स्तर पर बड़े पैमाने पर आयातित खाद्यान्न का प्रबंध सरल नहीं है। इसके कारण पहले से विद्यमान अपर्याप्त बुनियादी सुविधाओं पर यानी जहाजरानी सुविधाओं, बंदरगाहों पर बुनियादी सेवाएं और आंतरिक परिवहन व्यवस्था पर अतिरिक्त दबाव पड़ सकता है।

विश्व व्यापार संगठन के नियमों की समीक्षा करके उसमें खाद्य सुरक्षा की धारा शामिल की जानी चाहिए। इस धारा के अंतर्गत विकासशील देशों को किसी भी ऐसी नीति का अनुसरण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसके अंतर्गत वे अपने देश में लगातार खाद्य-सुरक्षा की व्यवस्था कर सकें और उसे बनाए रख सकें।

निष्कर्ष

अनुभवजन्य अनुमानों के अनुसार निकट भविष्य में भारत उन देशों में शामिल हो जाएगा जो कुल मिलाकर अनाज का आयात करते हैं। खाद्य और कृषि संगठन के अध्ययनों के अनुसार भी कृषि व्यापार में उदारीकरण के फलस्वरूप अनेक विकासशील देशों में खाद्य असुरक्षा का खतरा बढ़ सकता है। इसे ध्यान में रखकर भारत जैसे विकासशील देशों को विश्व व्यापार संगठन समझौते को खाद्य सुरक्षा और व्यापार की अपनी बुनियादी आवश्यकता के अनुरूप अपनाना चाहिए। विश्व व्यापार संगठन नियमों की समीक्षा करके उसमें खाद्य सुरक्षा की धारा शामिल की जानी चाहिए। इस धारा के अंतर्गत विकासशील देशों को किसी भी ऐसी नीति का अनुसरण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसके अंतर्गत वे अपने देश में लगातार खाद्य- सुरक्षा की व्यवस्था कर सकें और उसे बनाए रख सकें। अगली समीक्षा के दौरान मुख्य खाद्यान्न और कृषि या औद्योगिक उत्पाद की अन्य वस्तुओं के बीच विद्यमान महत्वपूर्ण अंतर को सावधानीपूर्वक प्रकट किया जाना चाहिए। समझौते में 'खाद्य सुरक्षा बाक्स' के निर्माण पर सोचा जा सकता है जो वृद्धि और कटौती के वादों से मुक्त होगा।

यह भी आवश्यक होगा कि भारतीय कृषि की रक्षा के लिए सीमा शुल्क भारतीय कृषि उत्पाद के मूल्यों के आधार पर रखे जाएं और उन पर लगातार निगाह रखी जाए और यह पता लगाया जाए कि क्या विहित नियमों में ऐसा किया जा सकता है। भारतीय कृषि की प्रतियोगितात्मकता और न्यूनतम समर्थन मूल्य की प्रक्रिया के बीच संबंध पर भी निगरानी रखना जरूरी है। अंततः अगर इस बात की संभावना है कि भारत मध्यवर्ती समय में खाद्य आयातक हो सकता है तो यह उसके हित में होगा कि वह निवल खाद्य आयातक देशों की मांगों का समर्थन करे। ❑

(प्रोफेसर बी. भट्टाचार्य भारतीय विदेश व्यापार संस्थान में संकाय अध्यक्ष हैं।)

कृषि में पानी का इष्टतम उपयोग

डी.एन. तिवारी

वर्ष 1999-2000 में भारत ने 14.2 करोड़ हेक्टेयर जुती भूमि से लगभग 20.6 करोड़ टन अनाज पैदा किया। कुल फसली भूमि का 37 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र है और इस क्षेत्र से 55 प्रतिशत खाद्य उत्पादन प्राप्त होता है। वर्षा-सिंचित इलाके कुल जुती भूमि का 63 प्रतिशत बैठता है लेकिन इनसे खाद्य उत्पादन केवल 45 प्रतिशत ही होता है। प्राकृतिक संसाधनों के आधार, कृष्य भूमि और जल पर ही उत्पादन प्रक्रिया टिकी हुई है, लेकिन इन पर काफी दबाव बना हुआ है। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सिंचाई प्रणाली को और कारगर बनाना होगा। नीति निर्माताओं, योजनाकारों और विकास व्यवसायिकों के सामने आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि कैसे कृषि पैदावार बढ़ाई जाए और गांवों में कैसे लगातार रोजगार उपलब्ध कराया जाए।

बढ़ते जैविक दबावों, नाजुक पारिस्थितिक प्रणालियों में कृषि के विस्तार, भूजल के जरूरत से अधिक दोहन, रसायनों के अत्यधिक प्रयोग तथा 'काटो और जलाओ' खेती के कारण मिट्टी का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। मिट्टी की ऊपरी परत के नष्ट हो जाने से खेतों की जमीन कमजोर हो गई है तथा छोटी-छोटी नालियों ने बड़े खड्डों और खंदकों का रूप ले लिया है। पवन व पानी के कारण भू-क्षरण, जल के भराव, खारेपन और खेती की अनुचित प्रणालियां मिट्टी के खराब होने के जाने-माने कारण हैं। मिट्टी के बारे में कहा गया है कि 'एक मुट्ठीभर अच्छी मिट्टी चमत्कार से कम नहीं होती। अगर आदमी इसकी सही देखभाल करे, तो यह लगभग अनंतकाल तक जीवन का पोषण करती रहेगी। इसकी उपेक्षा करो आदमी को भी साथ लेकर मिट्टी ढह जाएगी और भर जाएगी।'

कृषि की निरंतरता के लिए जरूरी है कि पर्यावरण और संसाधनों के आधार का संरक्षण किया जाए। जल की गुणवत्ता की सुरक्षा, वृद्धि और बहाली तथा जल प्रदूषण में कमी सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने तथा बेहतर सिंचाई के लिए जरूरी है। भारत का सिंचाई विकास का इतिहास बड़ा पुराना है। दूसरी शताब्दी में कावेरी नदी के डेल्टे पर बनी ग्राण्ड एनीकट सिंचाई प्रणाली सबसे पुराने उदाहरणों में से एक है।

देश के विभाजन तक सिंचाई व्यवस्था के विकास की गति धीमी रही। स्वतंत्रता के बाद से अनाज की भारी कमी और नतीजतन किए जाने वाले अनाज के आयात की समस्या से निपटने के लिए सरकार ने सिंचाई को उच्च प्राथमिकता दी। देशभर में कार्यक्रम शुरू किए गए, जिनमें बड़ी नदी घाटी योजनाएं तथा मझौली व लघु सिंचाई योजनाएं शामिल थीं।

जल प्रणालियां आपस में जटिल रूप से जुड़ी हुई हैं। इसे देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि जल प्रणालियों का प्रबंधन समग्र रूप में हो और यह लोगों एवं पर्यावरण की जरूरतों के संतुलन पर आधारित हो।

इनमें भूजल ढांचों को भी स्थान दिया गया। राज्यों में साठ के दशक के दौरान, जब हरित क्रांति की शुरुआत हो रही थी, भूजल योजनाओं को प्राथमिकता मिली। सस्ती बिजली और ग्रामीण विद्युतीकरण के विस्तार के साथ-साथ हरित-क्रांति ने जोर पकड़ा। विभाजन के बाद से देश में सिंचित क्षेत्र 14 करोड़ हेक्टेयर के अंतिम लक्ष्य की 2.26 करोड़ हेक्टेयर की तुलना में बढ़कर जून 1997 तक 8,076 करोड़ हेक्टेयर तक पहुंच गया। इसमें भूजल विकास लगभग 50 प्रतिशत था। इतना व्यापक कार्यक्रम लगभग पूरी तरह स्वदेशी तकनीक और उपकरणों के बूते पर चलाया गया है।

भूक्षरण, अवसादन, वनों के नाश और रेगिस्तान के बढ़ने के कारण भूमि का अवक्रमण हुआ है और कुछ मामलों में तो जलाशयों के बनने से पारिस्थितिकी प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इनमें से कई समस्याएं तो विकास के ऐसे माडल से उत्पन्न हुई हैं जो सतही व भूजल संसाधनों के संरक्षण के बारे में जनचेतना और शिक्षा की कमी की वजह से पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती हैं। जल संसाधनों के विकास, प्रबंध, उपयोग और उपचार तथा जलीय पारिस्थितिक प्रणालियों के बीच संबंधों के बारे में समय का अभाव भी व्यापक स्तर पर है। खेतिहर पैदावार बढ़ाने के लिए जलापूर्ति के नए साधनों के विकास, पुनर्वास और उपचार तथा पौधों व पशु प्रजनन की दिशा में और प्रगति के लिए जरूरी आनुवांशिक सामग्री के स्रोत जैव विविधता के नुकसान को रोकने के लिए और उपाय करने के बजाय रोकथाम के तौर-तरीके अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

मुद्दे और जरूरतें

देश में शुद्ध बुवाई क्षेत्र के लगभग 14.2 करोड़ हेक्टेयर पर ही स्थिर बने रहने और 63 प्रतिशत जुती भूमि की वर्षा सिंचित होने के कारण खेतिहर पैदावार में लक्षित वृद्धि दर प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण जरूरत के रूप में अतिरिक्त सिंचाई क्षमता विकसित करना जरूरी है। इसमें सिंचाई क्षमता के आधुनिकीकरण/नवीकरण से अतिरिक्त सिंचाई व्यवस्था करना भी शामिल होगा। परिस्थितियों को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपायों का सहारा लिया जाए—

1) नई से नई बड़ी और मझौली सिंचाई परियोजनाएं शुरू करने की प्रवृत्ति के कारण प्रचुरता, आई, संसाधनों का फैलाव हल्का हुआ और परिणामस्वरूप समय व लागत दोनों में वृद्धि हुई। सभी चालू परियोजनाओं को कम से कम पांचवीं योजना से पूर्व शुरू की गई परियोजनाओं को पूरा करने के प्रयास करने होंगे।

2) किसी भी जल संसाधन विकास परियोजना की शुरुआत से ही सतही और मूल संसाधनों के संयुक्त उपयोग की योजना बनाना।

3) मौजूदा प्रणालियों के नवीकरण और आधुनिकीकरण से जल के कुशल उपयोग को बढ़ावा देना।

4) जल दरें बढ़ानी होंगी और जल उपयोग की दिशा में अर्थव्यवस्था को उत्साहित करने के लिए जल उपयोग को युक्तिसंगत बनाना होगा।

5) मौजूदा प्रणालियों के नवीकरण और आधुनिकीकरण से जल के कुशल उपयोग को बढ़ावा देना होगा और सिंचाई प्रणालियों में किसानों की भागीदारी को चरणबद्ध रूप से बढ़ाना होगा।

6) भूजल संभावनाओं के विशेषकर देश के पूर्वी क्षेत्र में विकास और इस्तेमाल को बढ़ावा देना होगा। इसके लिए तकनीकी, पर्यावरणीय और आर्थिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए निवेश क्रियान्वयन और प्रबंध में लाभार्थी किसानों की प्रत्यक्ष भागीदारी को बढ़ाना होगा।

7) सिंचाई परियोजनाओं के अधिक किफायती और कुशल क्रियान्वयन और प्रबंध की दृष्टि ऐसे अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देना होगा, जिसे अपनाने में आसानी हो।

भूजल संभावनाओं के विकास और इस्तेमाल को विशेषकर देश के पूर्वी क्षेत्र में बढ़ावा देना होगा। इसके लिए तकनीकी, पर्यावरणीय और आर्थिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए निवेश क्रियान्वयन और प्रबंधन में लाभार्थी किसानों की प्रत्यक्ष भागीदारी बढ़ानी होगी।

8) लघु सिंचाई योजनाओं के लिए संस्थागत ऋण के प्रवाह को बढ़ाने के लिए कदम उठाने होंगे।

9) निर्मित क्षमता तथा उसके उपयोग के अंतर को पाटना होगा जिसके लिए कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम को मजबूत बनाना होगा।

10) सिंचाई क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा देना होगा।

11) देश में हर साल 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर वर्षा होती है और लगभग 16 करोड़ हेक्टेयर मीटर वर्षा खेतिहर भूमि पर पड़ती है। लगभग 2.4 करोड़ हेक्टेयर मीटर के बराबर का वर्षा जल उपलब्ध है, जिसको छोटे पैमाने के जल संग्रहण ढांचों में एकत्र किया जा सकता है।

भूमि अवक्रमण के कारण

1) कुछ इलाकों में जल भराव और क्षारीयता मुख्य समस्याएं होती हैं और इनका कारण सिंचाई को बताया जाता है। जलभराव और क्षारीयता के कई कारण हैं जो प्राकृतिक भी हैं और मानव जन्य भी। उनका ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है।

प्राकृतिक कारण

- स्थालाकृति या कम गहराइयों पर कठोर परतों के होने जैसी मिट्टी की प्रतिकूल स्थितियों के कारण जलनिकासी की कमजोर प्राकृतिक व्यवस्था;
- नदियों के उद्यान के परिणामस्वरूप अस्थाई या सीजन में बाढ़;
- घटिया प्राकृतिक जलनिकासी के साथ-साथ भारी वर्षा, तूफानी लहरें, मुहाने का प्रवाह, ज्वार की स्थिति;
- निम्न भूमियों में पाई जाने वाली उच्च पठारों में पारगम्य अंत:स्तर के जरिए अत्यधिक रिसाव।

मानव-निर्मित कारण

- सड़कों पुलों, नहरों, रेलवे तटबंधों, भवनों आदि के निर्माण जैसी निर्माण गतिविधियां, जिनसे प्राकृतिक जलनिकासी व्यवस्था में रुकावट आती है;
- नहरों, जल वितरिकाओं, लघु और जलमार्गों, फील्ड चैनलों और नहरों पर रिसाव वाले ढांचों से रिसाव;
- फसलों को उनकी वाष्पोत्सर्जन जरूरतों अर्थात उच्च जल आवश्यकताओं के बाद भी सिंचाई जल की आपूर्ति व प्रयोग;
- दोषपूर्ण मूल्यनिर्धारण तथा नीतियों के कारण नहर के पानी और भूजल के संयुक्त उपयोग का अभाव;
- रात्रि में सिंचाई के लिए प्रोत्साहन की कमी;
- फार्म पर घटिया जल प्रबंध;
- अपर्याप्त जलनिकासी प्रणाली और मौजूदा जलनिकासी संरचना का गलत रखरखाव।
- भूजल स्तर के उठने से सिंचाई कमान में मृदा क्षारीयता की समस्या उत्पन्न होती है। क्षारीयता निम्नलिखित में से किसी एक या कई कारणों से होती है :

  सिंचाई के लिए प्रयुक्त क्षारीय सतह या भूजल के कारण लवणों का जमाव; निचली सतहों से कैपिलरी उठान के साथ साथ लवणों का ऊपर जाना; सिंचाई के लिए सोडायुक्त जल का इस्तेमाल; समुद्री जल का प्रवेश रिसाव; उच्च वाष्पोत्सर्जन की जरूरत और लवण का कम ग्रहण स्तर; लवणों को ऊपर की ओर आने को रोकने के लिए ताजा पानी की अपर्याप्त मात्रा।

2) देश के लगभग 50 प्रतिशत भौगोलिक हिस्से में वनों के नाश, अधिक चराई, कृषि के गलत प्रबंध, शिफटिंग कल्टीवेशन, जल व पवन कटाव, जलभराव, क्षारीयता और लवणीकरण से अलग-अलग मात्रा में भूमि अवक्रमण होता है। भूक्षरण के कारण हर साल भूमि की 5.3 अरब टन ऊपरी परत नष्ट हो जाती है। औसत मृदा क्षरण के प्रतिवर्ष 16 टन हेक्टेयर से अधिक होने का अनुमान लगाया गया है, जिसका अर्थ हुआ लगभग 1 मिलीमीटर प्रतिवर्ष अथवा 1 सेंटीमीटर प्रति दशक।

3) हर टन अनाज के लिए मिट्टी से लगभग 105 किग्रा पोषक तत्व निकल जाते हैं। एक टन अनाज

पैदा करने में फसल 35-46 किलोग्राम एन.पी.के. का इस्तेमाल करती है। एक टन अनाज पैदा करने में एक अनाज की फली लेप्यून 210 किलोग्राम एन.पी.के. को सोखती है। अनाज के लेग्यूम प्रतिवर्ष 450 किग्रा. नाईट्रोजन/हेक्टेयर फिक्स करते हैं।

जल प्रणालियों के परस्पर जटिल संबंधों को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि इनका प्रबंध संपूर्णता में हो (जलग्रहण और कमान क्षेत्र विकास के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर) और लोगों व पर्यावरण की जरूरतों के संतुलन पर आधारित हो। निम्नलिखित समस्याओं के समाधान की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए:

i) जलक्षरण व नियंत्रण उपाय, जिनके लिए

उभार कृषि (कंटूर फार्मिंग); पट्टी पर कृषि; फसल प्रणाली संरक्षण; घासपतवार और फसल के शेष का प्रबंध; पुश्तों, मेंड़ों और नालियों पर वनस्पति अवरोध; वनस्पति आच्छादों वाले जलमार्ग, और नालीबंदी को अपनाया जा सकता है।

ii) गैर-कृषि योग्य और अनाच्छादित भूमि के प्रबंध में इन्हें शामिल किया जा सकता है:

जलनिकासी नालियां; यथास्थान आर्द्रता संरक्षण उपाय; खाइयों और टीलों की घेराबंदी; सामाजिक घेराबंदी और वानस्पतिक आच्छाद चरागाह और वनारोपण।

iii) वर्षासिंचित कृषि में समन्वित जलसंभर नीति अपनाकर, जिससे कृष्य और गैर-कृष्य भूमियों में जरूरतों के अनुसार मृदा-संरक्षण उपायों को बल मिलता है।

iv) बदला कृषि का सामाजिक-आर्थिक विकल्प, पर्यावरण अनुकूल उत्खनन, पर्यावरणी-पर्यटन और गरीबी दूर करने के कार्यक्रम।

v) वर्षा-जल, भू-जल के पुनर्भरण और पानी के उचित उपयोग से भूमि को पुष्ट बनाना।

vi) पेड़ लगाने, कृषिवानिकी, फार्मवानिकी और हरियाली को बढ़ाकर मिट्टी को जमीन पर जमाए रखना।

vii) तफलीदार फसलों को लगाकर और विविधीकरण को बल देने वाले उचित फसल-चक्र को अपनाकर मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाना।

viii) शून्य जुताई, घटी जुताई, सर्विस सीडिंग, क्यारी-रोपण, ड्रिप व छिड़काव सिंचाई के इस्तेमाल और सूक्ष्म कृषि, पानी व ऊर्जा की बचत, तथा पैदावार बढ़ाने को प्रोत्साहित करने वाली कृषि पद्धतियों जैसी संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों को अपनाकर।

ix) स्थानीय लोगों को ज्ञान, उत्साह और ऊर्जा के इस्तेमाल और बातचीत व विवाद निपटान मंच बनाने के बारे में निर्णय लेने और उनपर अमल करने के अधिकार देकर।

x) समन्वित कृषि के सभी कार्यों में तालमेल के जरिए सिंचाई क्षमता के उपयोग में सुधार और सिंचाई क्षेत्र से कृषि उत्पादन व उत्पादकता को अधिकतम बढ़ाना।

xi) सभी संबद्ध व्यक्तियों को निरंतर कृषि अपनाने के लिए भूमि और जल के विभिन्न पहलुओं के बारे में शिक्षित, सूचित व संवेदी बनाना।

एक अरब से अधिक जनसंख्या का पेट भरने के लिए कृषि पैदावार बढ़ाने के वास्ते जल के उपयोग की कीमत भी है और फायदे भी। ऐसे अमूल्य संसाधनों को संरक्षित व समृद्ध करना अत्यावश्यक है। भारत के सामने इस सदी में प्रति व्यक्ति कम जमीन और सिंचाई जल से अधिक पैदावार करने का प्रयास करने के अलावा और कोई भी विकल्प नहीं है। अत: पैदावार को लगातार महत्व देते रहना जरूरी तो है, लेकिन इसको अनंतकाल तक बनाए रखने योग्य भी होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि हमें 'सभी को भोजन' का लक्ष्य प्राप्त करना है, पारिस्थितिकी, सामाजिक व लिंग समानता, ऊर्जा संरक्षण, रोजगार जनन तथा सामाजिक मूल्यांकन के सिद्धांतों के जरिए आने वाली 'सर्वदा हरित क्रांति' अत्यंत आवश्यक है। भूमि और जल की देखभाल ऐसे 'सर्वदा हरित क्रांति' अभियान और पर्यावरण संरक्षण तथा उसकी निरंतरता बनाए रखने की नींव है, जो अब विकल्प नहीं बल्कि अनिवार्यता है। ❑

(श्री डी.एन. तिवारी योजना आयोग के सदस्य हैं।)

जल-संभर का साझा प्रबंधन

जे.एस. समरा

जल-संभर सीमाएं कृत्रिम भूमि-उपयोग सीमाओं, यथा जंगल, कृषि आदि को स्वीकार नहीं करती एवं पहाड़ी टीले से घाटी तक के सारे इलाके के एक समान विकास की आशा करती हैं। विशाल प्राकृतिक संसाधनों का बिखराव-भरा प्रबंधन अनेकर प्रकार का हो सकता है। सामान्य दृष्टिकोण में मैत्रीपूर्ण समूह गतिविज्ञान द्वारा मनस्थिति परिवर्तन लाने वाले क्षमता निर्माण कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी गई है।

जल-संभर प्राकृतिक दृष्टि से एक सुनिश्चित क्षेत्र होता है, जो एक समान बिंदु की ओर प्रवाहित होता है। जल-संभर पर आधारित टिकाऊ भूमि प्रबंधन का विचार काफी पुराना है जो कि वेदों के श्लोकों से साफ जाहिर है। तालाब से सिंचाई, विशेष रूप से दक्षिण भारत में तालाब से सिंचाई-प्रणालियां, हिमालय क्षेत्र में गुहलें (जल प्रणालियां), वन पंचायतें और सामुदायिक आधार पर चलाए जाने वाली गैर-वैधानिक संस्थाएं हमारी पारंपरिक ताकत के कुछ उदाहरण हैं। फिर विकास एक गतिशील जटिल प्रक्रिया है और उभरती समस्याओं के समाधान के लिए नीति में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। सन 1954 के दौरान सारे भारत में मृदा और जल-संरक्षण, अनुसंधान, प्रदर्शन और प्रशिक्षण के कई केंद्रों की स्थापना कर प्रमुख नीतिगत परिवर्तन किया गया। वर्ष 1956 से जीव भौतिकी के मुद्दों, खासकर जल विज्ञान पर जोर देते हुए लगभग 42 लघु जल शेड विकसित किए गए। इस सीमित अनुभव के अनुसंधान निष्कर्षों के आधार पर 1961-62 में विभिन्न जलसंग्रह-क्षेत्रों के संरक्षण के लिए नदी घाटी योजना शुरू की गई। देहरादून के केंद्रीय मृदा और जल संरक्षण अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान ने 1974 के दौरान बदलाव लाते हुए सहभागी और मांग परिचालित जल-संभर प्रबंधन के पक्ष में कार्रवाई की शुरुआत की (तालिका-1) वर्ष 1985 से कुछ गैर-सरकारी संगठनों ने भी लोगों के साथ साझीदारी को बढ़ावा देने में सहयोग दिया। वर्ष 1987 के सूखा वर्ष में जल-संभर दृष्टिकोण की सार्थकता का आश्वस्तकारी प्रदर्शन किया गया था। तब बिना उपचारित जल-संभरों की तुलना में उपचारित जलशेडों में उत्पादकता में गिरावट कहीं कम थी (रेखा चित्र-1) कृषि और सहकारिता मंत्रालय ने 1990-1991 के दौरान राष्ट्रीय जल-संभर विकास कार्यक्रम शुरू किया। हरियाले क्षेत्र में वृद्धि, भूगर्भीय पानी की भराई, मिट्टी के कटाव और प्राकृतिक जल संसाधनों में गाद इकट्ठा होने में कमी और जैव-विविधता के पुनरुज्जीवन जैसे लाभ पर्यावरण में साफ झलकने लगे। ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय ने भी 1994 में ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए जल-संभर प्रबंधन की अवधारणा को स्वीकार कर लिया। हनुमंत राव और मोहन धारिया समिति रिपोर्टों ने जल-संभरों के मांग परिचालित और नीचे से ऊपर विकास को मूर्त रूप देने में बहुत योगदान किया। इसके लिए रिपोर्टों में आम लोगों को प्रमुख खिलाड़ी और सरकार एवं गैर-सरकारी संगठनों के पदाधिकारियों को सेवा प्रदानकर्ताओं के रूप में मान्यता दी गई। कृषि मंत्रालय ने भी वर्षा-निर्भर खेती के लिए राष्ट्रीय जल-संभर विकास कार्यक्रम (एन.डब्ल्यू.डी.पी.आर.ए.) लागू करने के लिए दो अक्तूबर, 2000 से साझा दृष्टिकोण अपनाया है।) लोकपरक

जल-संभर प्रबंधन की वर्तमान रूपरेखा की प्रमुख विशेषताएं संक्षेप में नीचे दी गई हैं :

संस्थागत प्रबंध

ग्रामीण विकास मंत्रालय जिला मुख्यालयों को सीधे राशि भेज कर जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के माध्यम से अपने कार्यक्रम लागू करता है।

कृषि मंत्रालय के एन.डब्ल्यू.डी.पी.आर.ए. कार्यक्रम में कृषि, जल-संभर विकास, मृदा संरक्षण, भूमि विकास कार्य, स्वायत कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी जैसी किसी भी संस्था को केंद्रीय समन्वयकारी एजेंसी के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। यह एजेंसी आगे परियोजना क्रियान्वयन एजेंसी का चयन करे। कोई भी सरकारी संस्था, अनुसंधान-संगठन, गैर-सरकारी संगठन, पंचायत या किसी सोसाइटी अथवा धर्मार्थ कानून के तहत पंजीकृत स्वयंसेवी संस्था परियोजना क्रियान्वयन एजेंसी बन सकती है। ये मतदाता बनने लायक सभी व्यक्तियों की आम सभा यानी ग्रामसभा आयोजित कर जल-संभर क्षेत्र के लोगों को प्रयोक्ता समूहों, स्वसहायता दलों और अंततः जल-संभर संगठनों में गठित करते हैं। प्रयोक्ता समूहों, स्वसहायता समूहों, पंचायतों, परियोजना क्रियान्वयन एजेंसियों, महिलाओं और पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधियों के साथ पदाधिकारी नामजद किए जाते हैं। इन प्रयोक्ता और स्वसहायता समूहों का गठन लघु उत्पादन प्रणाली और लघु उद्योगों को बढ़ावा देने तथा कर्ज आवश्यकताएं पूरी करने के लिए किया जाता है। पिछले चार वर्षों में इन वैकल्पिक संस्थागत प्रबंधों का व्यापक परीक्षण किया गया है।

प्रवेश कार्य

संपर्क कायम करने के कामों के लिए अधिकाधिक तीन प्रतिशत राशि निर्धारित की जाती है। जल-संभर क्षेत्र में रहने वाले लोगों से बात कर यह मालूम किया जाता है कि सबसे अधिक व्यक्तियों के हित और आवश्यकताएं क्या हैं। इन आवश्यकताओं में हैंडपंप लगाना, गांव के तालाब से गाद निकालना और लड़कियों/महिलाओं को सिलाई का प्रशिक्षण देना भी शामिल हो सकता है।

पारिदर्शिता

ग्रामीणों और सेवा प्रदानकर्ताओं के संयुक्त खाते खोलकर और चलाकर अधिक सहयोग और ईमानदारी से काम करना टिकाऊ सांझे विकास की महत्वपूर्ण कार्यनीति है। रोकड़ बहियों, हुंडियों और वाउचरों के भी गांवों में रखे जाने की आशा है। चैकों पर संयुक्त रूप से हस्ताक्षर करने में सरकारी कर्मचारियों की आरंभिक अनिच्छा तेजी से दूर हो रही है। सरकारी संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों और धन देने वाले अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा लागू परियोजनाओं के संबंध में लोगों से प्राप्त प्रतिक्रिया से समाज के ज्यादा अधिकारसंपन्न होने और अधिक जिम्मेदारियां संभालने का पता चला है।

अंशदान

किसानों से अपेक्षा की जाती है कि वे निजी भूमि पर कार्यों के लिए लागत का दस से 50 प्रतिशत और शामलाटी जमीन पर कार्यों के लिए लागत का 5 प्रतिशत देंगे। व्यक्तिपरक कार्यों के लिए अनुसूचित जातियों/जनजातियों का अंशदान 5 से 25 प्रतिशत और समान कार्यों के लिए 5 प्रतिशत अंशदान होता है। इस कार्यनीति से किसानों की पसंद या प्राथमिकता वाली कार्रवाइयों को लागू करने में आसानी होती है और इससे आत्मीयता पनपती है। किसान मुख्य रूप से श्रम के रूप में या खेत में पड़ी खाद, पत्थर या रेत आदि स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री के रूप में अपना अंशदान देते हैं। ये स्थानीय चीजें वे भोगाधिकार के रूप में ले सकते हैं। राजस्थान में और मध्य प्रदेश के कुछ कार्यों के लिए श्रमिकों को पूरी मजदूरी दी जाती है। उनके पांच से 10 प्रतिशत अतिरिक्त काम को अंशदान के रूप में गिना जाता है। इस पद्धति में अगर कोई भूस्वामी स्वयं श्रमिक रूप में काम न करे तो कोई अन्य उसके लिए अंशदान कर सकता है। भारतीय फार्म वन विकास सरकारी लिमिटेड परियोजनाओं में प्रतिदिन चार से पांच रुपये मजदूरी में से काटकर उसे श्रमिकों के शेयरों में बदल दिया जाता है। गुजरात में अंशदान नकदी के रूप में किया जाता है। केंद्रीय मृदा और जल संरक्षण अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थान द्वारा लागू की गई परियोजाओं में पांच प्रतिशत से 65 प्रतिशत तक अंशदान होता है। यह अंशदान प्रेरणा, गतिविधि और स्थल विशेष पर निर्भर करता है।

जल-संभर विकास कोष

सहभागियों के अंशदान को अलग बैंक खाते में जमा करा कर विकास को टिकाऊ बनाने के लिए कोश बना दिया जाता है। इस कोश से रकम तभी खर्च की जा सकती

है जब विदेशी वित्तीय सहायता बंद हो जाए। एक बार किसानों को यह यकीन हो जाए कि उनकी दी हुई रकम संस्था के पास जमा रहेगी तो किसान प्रेरित होकर निर्धारित न्यूनतम राशि से भी कहीं अधिक धन जमा करा देते हैं। वर्षा पर निर्भर कृषि के लिए राष्ट्रीय जल-संभर विकास कार्यक्रम के स्वीकृत बजट में से एक प्रतिशत राशि सामुदायिक परिसंपत्ति को बनाए रखने के लिए अलग रखी जाती है। इसी के बराबर राशि किसान या राज्य सरकारें देती हैं। कोष को कई उपायों से बढ़ाया जा सकता है।

महिला भागीदारी

देश में विशेष रूप से पहाड़ी, वर्षा-निर्भर और ऊसर परिवेश वाले इलाकों में महिलाएं कुल श्रमिक संख्या के आधे से अधिक हैं। इन इलाकों से पुरुष श्रमिकों का अपनी

तालिका-1

भारत में संगठित जल-संभर प्रबंधन कार्यक्रम का विकास

प्रारंभ करने का वर्ष	जल-संभर संख्या/क्षेत्र	एजेंसी/स्कीम	पूंजी निवेश
1956	42 संख्या	केंद्रीय मृदा और जल-संरक्षण, अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान	परीक्षण के तौर पर
1961-62 (आर.वी.पी.)	33 लाख हेक्टेयर (आठवीं योजना तक)	18 राज्यों में 29 जल-ग्रहण क्षेत्र	68260
1980-81 (एफ.वी.आर.)	18.3 लाख हेक्टयर	8 राज्यों में 10 जल-ग्रहण क्षेत्र	26400
1983	47 संख्या	केंद्रीय मृदा और जल संरक्षण, अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान (सी.आर.आई.डी.ए.)	ओ.आर.पी.
1987	12000 हेक्टेयर	जल-संभरों का सहभागी समन्वित विकास	3000
1991	2497 संख्या	वर्षा पर निर्भर खेती के लिए राष्ट्रीय जल-संभर विकास कार्यक्रम	112850
1991	5 लाख हेक्टेयर	विश्व बैंक	82100
1991	1.3 लाख हेक्टेयर	डी.ए.एन.आई.डी.ए.	6000
1993	2.42 लाख हेक्टेयर	यूरोपीय आर्थिक समुदाय	10650
1994	2.54 लाख हेक्टेयर	ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय	21570
1995	0.35 लाख हेक्टेयर	भारत स्विस सहभागी जल-संभर विकास	7670
1997	22.5 लाख हेक्टेयर	कृषि मंत्रालय (सभी स्कीमें)	334050
1997	1.88 लाख हेक्टेयर	एम.ओ.ई.एफ.	27390
1997	—	ग्रामीण विकास मंत्रालय	108200
1997	—	समुदायों के माध्यम से पर्यावरणीय संसाधनों का प्रबंधन संस्थान, आगरा खान प्रतिष्ठान	2000

पारिवारिक आय बढ़ाने के लिए अन्यत्र पलायन एक आम बात है। महिला श्रमिकों के अधिक संख्या में होने के बावजूद वे उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों, हिमाचल प्रदेश और उत्तरांचल में, हिमाचल के अधिक ऊंचे इलाकों, और केरल राज्य के मातृ-प्रधान समाज को छोड़ बाकी क्षेत्रों में अपर्याप्त रूप से अधिकारसंपन्न हैं। उन्हें अधिकारसंपन्न बनाने के कई दिशा-निर्देश दिए गए हैं। ऋण और किफायत संगठनों, रेशम कीड़ा पालन व्यवसाय, उद्योग, नर्सरियों और मुर्गी पालन व्यवसाय आदि में महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक सफल रही हैं।

भूमिहीनों/असुविधा-पीड़ितों का जुड़ाव

अतीत में कुछ भू-आधारित कार्यक्रमों में इन वर्गों के हितों पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। वास्तव में धन देने के मानदंड प्रति हेक्टेयर आधार पर निर्धारित किए गए। बेशक आठवीं योजना में वर्षा आधारित कृषि के लिए राष्ट्रीय जल-संभर विकास कार्यक्रम में भूमिहीनों या छोटे भूमि-मालिकों के लिए कम उपज प्रणाली को आधार बनाया गया। नौवीं योजना के समान दृष्टिकोण पत्र में इन्हें 20 से 25 सदस्यों के छोटे-छोटे समरूपी समूह बनाने के लिए प्रेरित किया गया है। ये समूह आजीविका, सामाजिक सादृश्यता और संगतता को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। साढ़े सात प्रतिशत राशि इस कार्य के लिए विशेष रूप से आवंटित की जाती है। स्थाई कोष के लिए अपनी बचत की हद से हद दुगनी, लेकिन 25,000 रुपये तक की राशि स्थायी कोष के लिए अनुदान के रूप में दी जाती है। विभिन्न कार्यों से आजीविका कमाने का मुख्य उद्देश्य उत्पादक रोजगार के अवसर जुटाना है।

समेकन: यह कई आयामों वाला अधिक व्यापक मुद्दा है। विभिन्न विभागों, मंत्रालयों और वित्तीय सहायताकर्ताओं में एक सिरे से दूसरे सिरे तक नीति, दिशा-निर्देश, मानदंड और संस्थागत प्रबंध में विषमता पाई जाती है। आठवीं योजना में कोष जुटाने के मानदंडों में 3500 रुपये प्रति हेक्टेयर से लेकर 32,000 रुपये प्रति हेक्टेयर तक कई स्तर थे। अब कई प्रमुख खिलाड़ियों में ग्रामीण विकास और कृषि मंत्रालय ने समान दृष्टिकोण की बात स्वीकार कर ली है। नौवीं योजना की बाकी अवधि में बंजर भूमि विकास,

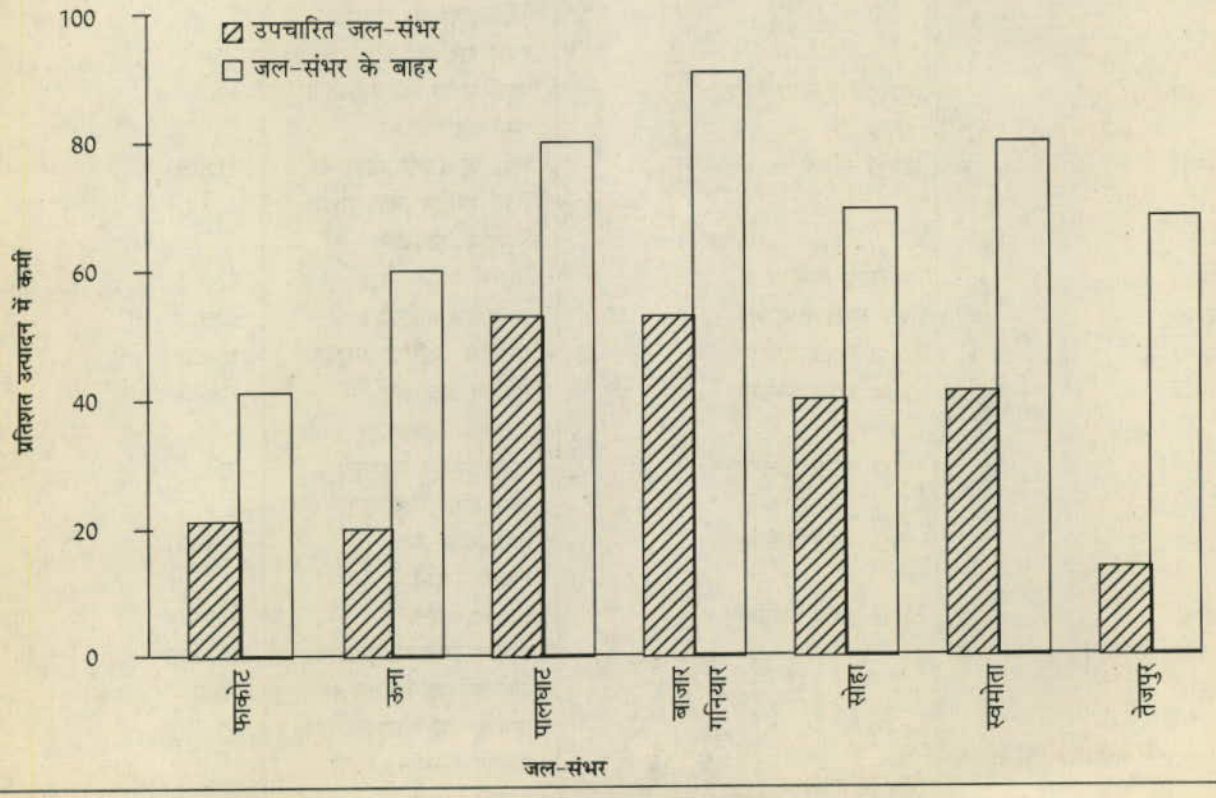

रेखाचित्र-1 : सूखे को कम करने में जल-संभर प्रबंधन का प्रभाव

सूखे की आशंका वाले इलाकों के कार्यक्रम, समन्वित बंजर भूमि विकास और वर्षा-निर्भर खेती के लिए जल-संभर कार्यक्रम आदि खंडों को अलग-अलग निर्धारित कर एक ही कार्य दो एजेंसियों को सौंपने से बचा गया है। तो भी अन्य ग्रामीण विकास योजनाओं के साथ इन्हें समन्वित करने के लिए बहुत कुछ काम बाकी है।

समान संपदा संसाधन प्रबंध

साझे या खुली पहुंच वाले संसाधनों जैसे चरागाहों, जंगलों, भू-जल सिंचाई नहरों और जीव विविधता वगैरह के प्रयोग में स्वच्छंद दृष्टिकोण के कारण इन संसाधनों के बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। समान दृष्टिकोण में बराबर की हिस्सेदारी, प्रोत्साहन, संयुक्त वन प्रबंधन, सामुदायिक संस्थाओं द्वारा संसाधन उपयोग का नियमन जैसी सामाजिक सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

जल-संभर बजट मानदंड

तालिका-2 में दिए गए बजट के मुख्य भागों में सामुदायिक संगठन, क्षमता निर्माण, संसाधनों के संरक्षण, भूमि आधारित उद्यमशीलता और रोजगार के लिए प्रतिमानों में बदलाव पर समुचित ध्यान दिया गया है।

तालिका-2

राष्ट्रीय जल-संभर विकास कार्यक्रम के विभिन्न भागों के लिए बजट राशि वितरण

क्रमांक	भाग	राशि वितरण (प्रतिशत)
(क)	प्रबंधन भाग	
	• प्रशासन लागत	10.0
	• सामुदायिक संगठन	7.5
	• प्रशिक्षण कार्यक्रम	5.0
	उप योग (क)	22.5
(ख)	विकास भाग	
	• प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन	50.0
	• भू-स्वामित्व (उद्यमशीलता) के लिए कृषि उत्पादन	20.0
	• भूमिहीन परिवारों के लिए आजीविका	7.5
	उप योग (ख)	77.5
	सर्वयोग	100.0

निरीक्षण और मूल्यांकन

यह काम राष्ट्रीय, राज्य, जिला और जल-संभर स्तर की बहुविभागीय या बहुसंगठन समितियों को सौंपा गया है। आधुनिक उपकरणों/कार्यविधियों जैसे दूर-संवेदन, जी.आई. और सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग, परियोजना के काम के साथ-साथ या उसके पूरा होने पर प्रभाव के मूल्यांकन के लिए निर्धारित किया गया है। जवाबदेही लागू करने के लिए प्रत्येक तीसरे महीने आंतरिक लेखा परीक्षा और वर्ष में एक बार बाहर वालों से लेखा परीक्षा का प्रावधान है। परियोजना क्रियान्वयन के विश्लेषण और प्रलेखन के लिए स्वतंत्र सलाहकार भी नियुक्त किए जा सकते हैं।

विवाद

स्थिति में सुधार के लिए नीतिगत कार्रवाई में प्राय: अधिकार क्षेत्र, दृष्टिकोण और व्यवहार के परस्पर विपरीत होने के कारण बाधा पड़ती है। वन और गैर-वन क्षेत्रों में समन्वय की कमी रहती है। जल-संभर क्षेत्र की सीमाएं भूमि के कृत्रिम उपयोगों और वन एवं कृषि के सीमांकन को स्वीकार नहीं करती और पहाड़ी टीले से घाटी तक के सारे क्षेत्र को एक साथ विकसित करने की अपेक्षा रहती है। बहुत से राज्य मुख्यालय धन के सीधा जिला-स्तर पर दिए जाने को पसंद नहीं करते। जिला-स्तर पर अधिकार क्षेत्र को लेकर कलक्टरों/उपकलक्टरों जैसे अधिकारियों और जिला परिषद के अध्यक्षों के बीच विवाद रहता है। उधर ग्राम-स्तर पर पंचायती और गैर-पंचायती राज संस्थाओं के बीच अक्सर अस्वस्थ स्पर्धा देखने में आई है। सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के बीच सद्भावनापूर्ण प्रयत्नों के कुछ उदाहरण छोड़ एक तरह की हठधर्मिता बनी रहती है। विशाल प्राकृतिक संसाधनों के बिखरावपूर्ण प्रबंधन की बेशुमार स्थितियां हो सकती हैं। बहुत से गांवों की प्रशासनिक सीमाएं और जल-संभर सीमाएं साथ-साथ नहीं चलती तथा कार्यक्रम गांवों के पार निकल जाते हैं। विवादों का समाधान बोझिल और थकाऊ होता है तथा काफी समय लेता है। इसीलिए समान दृष्टिकोण में मेल-मिलाप वाले समूहों के गतिविज्ञान के माध्यम से मन:स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी गई है। ❑

(श्री जे.एस. समरा नई दिल्ली के राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परिषद में उप-महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंध) हैं।)

मत्स्यपालन क्षेत्र की अपार संभावनाएं

के. गोपकुमार

योजना को थोड़ा और सुसंगत बनाकर एवं निवेश बढ़ाकर देश के समुद्री उत्पादों का निर्यात सन 2005 तक आसानी से 10,000 करोड़ रुपये के स्तर तक बढ़ाया जा सकता है। हमें राष्ट्रीय स्तर पर देश के मत्स्य क्षेत्र के विकास के लिए एक नया दृष्टिकोण और नई विचारधारा अपनानी होगी। साथ ही हमें उसकी सहायता के लिए संस्थागत, कानूनी और अनुसंधान एवं विकास व्यवस्था निर्मित करनी होगी।

केरल और बंगाल के समुद्रतटीय क्षेत्रों में रहने वाले मछुआरे सैकड़ों वर्षों से मछली पकड़ते रहे हैं। तथापि वैज्ञानिक विधि से मछली आदि पकड़ने की गतिविधियां देश में 1980 के आरंभ में शुरू हुईं। आज भारत की गणना विश्व के प्रमुख मछली पकड़ने वाले देशों में की जाती है। केवल चीन और जापान इस क्षेत्र में भारत से आगे हैं (खाद्य और कृषि संगठन 2000, तालिका-1)। विश्व में मछली घाटों या मत्स्य क्षेत्रों से पकड़ी जाने वाली मछलियों में कमी आई है। मछली पकड़ने के क्षेत्रों में विस्तार करके और इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियां बढ़ाकर भारत अपना मछली उत्पादन उच्च स्तर पर बनाए रख सका है। वर्ष 1998 के दौरान मछली उत्पादन में चीन का स्थान सबसे ऊपर था। वहां 2.8 करोड़ मछली पकड़ी गई। उसके बाद 20 लाख 30 हजार टन के साथ भारत दूसरे स्थान पर था। वर्ष 1993 से भारत ने मछली पकड़ने के क्षेत्र में औसतन 6 प्रतिशत की वार्षिक विकास दर बनाए रखी है। पंजाब जैसे कुछ राज्यों में तो औसत 13 प्रतिशत वार्षिक विकास दर प्राप्त की गई है (तालिका-2)।

विश्वव्यापी जलकृषि उत्पादन

एशिया के 22 देशों में जलकृषि उत्पादन में 10.7 प्रतिशत की वजन में और 12.3 प्रतिशत की मूल्यों में प्रभावोत्पादक वृद्धि हुई है। एशिया में 172 से अधिक किस्म की मछलियां पाई जाती हैं।

पंखड़ा मछली, विशेष रूप से चीनी और भारतीय नदियों और तालाबों में पाई जाने वाली मछलियां कुल जलकृषि उत्पादन का बड़ा हिस्सा (45.6 प्रतिशत) होती हैं। अधिक मूल्य की समुद्री और 'डायड्रोमस' पंखड़ा मछलियां मिलाकर कुल मूल्य का 7 प्रतिशत होती हैं। मूल्य में जल पौध (एक्वेटिक प्लांटस) 60 लाख अमेरिकी डालर के होते हैं। क्रष्टेश्यन (केंकड़े की भांति कड़ी ऊपरी खाल वाले जीव) यद्यपि कुल उत्पादन का केवल 4 प्रतिशत होते हैं तथापि मूल्य के हिसाब से वे सबसे महत्वपूर्ण हैं (17 प्रतिशत)। आज चोटी के जिन दस जल-जीवों का पोषण किया जाता है, उनमें लेमीनारिया जपेनिका प्रजाति के केल्प, क्रैपोस्ट्रिया जाइगास प्रजाति के प्रशांत चषकित शुक्ति या सीप, आक्टीथायस प्रजाति की मछलियां, साइप्रिनस कार्पियो प्रजाति की कामन कार्प और हाइपोथेलमिचथाइज मालिट्रिक्स की सिलवर कार्प शामिल हैं।

कानून

जलकृषि एक ऐसा उद्योग बन गया है जो भारत सहित अनेक देशों के

लिए विदेशी मुद्रा अर्जन का प्रमुख साधन है। भारत में जलकृषि का नियंत्रण राज्य सरकारों के हाथों में है क्योंकि मत्स्यपालन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार राज्यों के अंतर्गत आता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य और कृषि संगठन द्वारा अपने रोम सम्मेलन (1995) में स्वीकृत मछलियां पकड़ने की आचार संहिता का एशिया के देशों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा क्योंकि अधिकांश देशों ने इस आचार संहिता को मोटे तौर पर स्वीकार कर लिया है। आचार संहिता का अनुच्छेद 9 जलकृषि के विकास से संबंधित है और पालन करने के लिए प्रासंगिक सिद्धांत निर्धारित करता है। आचार संहिता का पहला सिद्धांत यह है कि सभी देश उत्तरदायी जल-कृषि संभव बनाने के लिए उपयुक्त कानूनी और प्रशासकीय ढांचा स्थापित करेंगे, उसे बनाए रखेंगे और उसका विकास करेंगे। वर्ष 1997 में खाद्य एवं कृषि संगठन ने तकनीकी दिशा-निर्देश जारी किए। इनमें उत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से मछलियों को पकड़ने की आचार संहिता के अनुच्छेद 9 को लागू करने के बारे में तकनीकी दिशा-निर्देश और सामान्य सलाह दी गई थी। वर्ष 1995 में जैविक विविधता समझौते के संबंध में संबद्ध पक्षों के दूसरे सम्मेलन द्वारा स्वीकृत 'जकर्त्ता आदेश' में जल कृषि के पर्यावरण संबंधी पहलुओं के बारे में उपयोगी सलाह है।

तालिका-1

विभिन्न देशों में मछली उत्पादन

(मिलियन टन) 1998

देश	पकड़ी गईं मछलियां	जलकृषि	योग
चीन	17.23	20.80	38.03
जापान	5.26	0.77	6.03
भारत	3.21	2.03	5.24
अमेरिका	4.71	4.45	5.16
रूसी संघ	4.45	0.06	4.51
इंडोनेशिया	3.70	0.70	4.40
चिली	3.27	0.29	3.56

तालिका-2

भारत में मछली उत्पादन

(मिलियन टन)

वर्ष	पकड़ी गईं मछलियां	जलकृषि	योग
1993	3.12	1.43	4.55
1994	3.21	1.53	4.47
1995	3.22	1.69	4.91
1996	3.47	1.78	5.25
1997	3.52	1.86	5.38
1998	3.21	2.03	5.24

स्रोत : (1) खाद्य और कृषि संगठन के वार्षिक प्रकाशन 'मछलियों संबंधी आंकड़े मछली पकड़ना' खंड 86/1, 1998

(2) खाद्य और कृषि संगठन के वार्षिक प्रकाशन 'मछलियों संबंधी आंकड़े : जल कृषि उत्पादन' खंड 86/2, 1998

भारत ने इस संबंध में पहले ही अपने उच्चतम न्यायालय के आदेशों के परिपालन में 'भारतीय जलकृषि प्राधिकरण' का गठन कर दिया है और वह अन्य एशियाई देशों से आगे निकल गया है। जलकृषि प्राधिकरण को तटीय क्षेत्रों में चिंगट, झींगा जैसे कड़ी खाल वाले जीवों के पालन-पोषण और पकड़ने के बारे में उचित नियम और विनियम बनाने का अधिकार है। इस प्राधिकरण को झींगा फार्मों के लाइसेंस जारी करने का भी अधिकार है।

भारतीय परिदृश्य

भारत में जल कृषि का बड़ी तेजी से विकास हुआ है। भारत के जल साधन व्यापक और विस्तृत हैं और यहां विभिन्न जातियों की मछलियों के विकास के लिए तरह-

तालिका-3

विश्व में पाई जाने वाली मछलियों की किस्में

क्षेत्र	किस्में
अफ्रीका	80
उत्तर अमेरिका	72
दक्षिण अमेरिका	51
एशिया	172
यूरोप	99
ओसेनिया	54
पूर्व सोवियत संघ	35

*कुछ किस्मों को एक ही वर्ग में वर्गीकृत किया गया है।

तरह की जलवायु पाई जाती है। यहां बर्फीली 'ट्राउट' से लेकर गर्म जलवायु में पाई जाने वाली 'कार्प' मछली तक सभी पाई जाती हैं। भारत के देश का समुद्री तट 8041 किलोमीटर लंबा है। जलकृषि के लिए उपयुक्त साधनों में शामिल हैं : 14 लाख हेक्टेयर खारा पानी, 28 लाख 50 हजार सरोवर और झीलें, 8 लाख लावारिस जल क्षेत्र और 20 लाख 50 हजार हेक्टेयर जलाशय। एशिया में और कहीं जलकृषि के लिए इतने अधिक जल साधन उपलब्ध नहीं हैं और इस विषय में भारत का स्थान चीन के बाद है। आज हम 20 से अधिक किस्मों की मछलियों का पालन-पोषण कर रहे हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण नाम तालिका-4 में दिए जा रहे हैं।

भारत में जल कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना समन्वित मत्स्यपालन है। समन्वित मछली पालन लोकप्रिय हो रहा है और किसानों द्वारा अपनाई गई विभिन्न व्यवस्थाएं नीचे दी गई हैं (तालिका-5)।

समन्वित मत्स्यपालन मछली फार्म में मछलियों, कृषि जिन्सों और पशुधन उत्पादन की विविधतापूर्ण और सामंजस्यकारी व्यवस्था है। इसमें कूड़ा-करकट और छीजन के पुन: इस्तेमाल के जरिए भूमि और पानी के अधिकतम उपयोग की व्यवस्था की जाती है। पूर्वोत्तर और पूर्वी भारत में धान के खेतों में मत्स्यपालन की बहुत पुरानी प्रथा है। तथापि इसमें उत्पादन बहुत कम है—एक हेक्टेयर भूमि में एक टन से भी कम मछली।

कार्प खेती

कार्प फार्मिंग भारत में ताजा जल मत्स्यपालन का मुख्य आधार है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान बीज उत्पादन शिखर पर पहुंच गया है— 20.00 करोड़ (20 अरब) अंडों से निकले मछलियों के बच्चे। भारत में मछली पालन की अनेक विधियां प्रचलन में हैं जैसे कि:

1. बहुपालन विधि
   - निषेचन और चारा-आधारित व्यवस्था
   - इस्तेमाल किए हुए पानी पर आधारित व्यवस्था
   - बायोगैस घोल पर आधारित व्यवस्था
   - जल में उत्पन्न घास-पात पर आधारित व्यवस्था
   - जल कृषि, बागवानी पर आधारित व्यवस्था
   - समन्वित मछली पालन या पशुधन आधारित व्यवस्था।
2. हवा में सांस लेने वाली मछलियों का एकल और बहुपालन
3. ताजे जलोत्पादों का एकल या बहुपालन
4. केज कल्चर

तालिका-4

भारत में पोषित कुछ महत्वपूर्ण मछलियां

मछलियां	किस्में
श्रिम्प (झींगा)	पेनिअस इंडिकस, पेनिअस मोनोडान, पेनिअस सैमी-सलकेटस
ओ'इस्टर (सीप, शुक्ति)	क्रैसोस्ट्रिया मद्रोसेनसिस
मसल्स (घोंघे आदि जीवों की जातियां)	पेर्ना इंडिका, पेर्ना विरिडिस
ग्रुपर्स (कलवा, हेकरू)	एपीनेफेलस टवीना
कीवीड (समुद्री शैवाल)	होलोथूरिया स्क्रैबा
क्लाउनफिश (समुद्र में पाई जाने वाली तेज चमकीले रंग की मछली)	एम्फिप्रायन काइरोगेस्टर
सीबैस (समुद्री बैस)	लैटिस कैल्केरिफर
कार्प्स (शफरी)	अनेक किस्में
फ्रेशवाटर प्रान झींगा	मैक्रोब्रेकियम रोजेनबर्गी और एम. माल्कमसोनी

तालिका-5

भारत में अमल में लाई जा रही मत्स्यपालन व्यवस्थाएं

कार्प कल्चर	4.6 टन/हेक्टेयर प्रतिवर्ष
मल प्रवाह व्यवस्था से पोषित	3.5 टन/हेक्टेयर प्रतिवर्ष
खरपतवार आधारित पाली कल्चर	3.5 टन/हेक्टेयर प्रतिवर्ष
बायोगैस घोल पोषित	3.5 टन/हेक्टेयर प्रतिवर्ष
समन्वित कृषि कर्म, पाल्ट्री/पिग/बागवानी	3.5 "
सघन तालाब मत्स्य पालन	10-15 "
गाय-भैंस के बाड़ों में मत्स्य पालन (पेन कल्चर)	4 "
केज कल्चर	10-15 कि./एम^2 प्रतिवर्ष
बहते पानी में मत्स्य पालन	20-15 "

5. पेन कल्चर
6. बहते पानी में मछली पालन
7. रिसर्कुलेटिंग फिल्टरिंग सिस्टम
8. मोलस्कैन पर्ल कल्चर।

श्रिम्प पालन

भारत में मछली पालन के लिए उपयुक्त लगभग 14 लाख 20 हजार हेक्टेयर भूमि में खारा पानी है। आज इसमें से लगभग 1.4 लाख हेक्टेयर भूमि श्रिम्प पालन के काम में लाई जाती है। वर्ष 1998 के दौरान हमने 82.634 टन श्रिम्प का उत्पादन किया। (तालिका 6 और 7)। श्रिम्प निर्यात से होने वाली कुल आय में इस प्रकार पोषित श्रिम्प का योगदान मात्रा में 52 प्रतिशत और दाम में 75 प्रतिशत है।

निर्वाह योग्य जल कृषि

उत्पादन व्यवस्था पर सघन जलकृषि का प्रतिकूल प्रभाव पहले से ही दिखाई देने लगा है। प्राकृतिक परिवेश, भौतिक पर्यावरण और जल व्यवस्था किसी समय अनेक तरह की मछलियों का विकास करती थी। मछली पालक अब एक ही तरह की मछलियों का पोषण करते हैं और अधिक वजन वाली और संकट किस्मों को पसंद करते हैं। एक ही वंश की मछलियों से लाखों आंगुलिक छोटी मछलियां पैदा की जाती हैं जिनमें अक्सर स्वजाति भक्षण की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। मछली पालकों के पास अब अपेक्षाकृत कम जननिक (उत्पत्तिमूलक) सामग्री है। सघन मछली पालन और उत्पादन के केंद्रीकरण से बड़े क्षेत्रों में मछली रोगों के फैलने की आशंका बढ़ी है। श्रिम्प रोगों के कारण पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश के अनेक मछली फार्म तबाह हो गए हैं। हमें उत्पादन बनाए रखने के लिए पर्यावरण अनुकूल ठोस व्यवस्था अपनानी होगी।

लाभप्रद मत्स्यपालन कैसे?

इसकी परिभाषा एक वाक्य में नहीं की जा सकती। एक बात स्पष्ट है। अगर श्रिम्प निर्यात नहीं होता तो श्रिम्प पालन आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं हो सकता। आज एक औसत मध्यवर्गीय भारतीय एक किलोग्राम पी. मोनोडोन नहीं खरीद सकता। वास्तव में बढ़िया किस्म के श्रिम्प भारतीय उपभोक्ताओं की मेज से गायब हो गए हैं। अगर तटवर्ती क्षेत्रों में श्रिम्प पालन बंद कर दिया जाए तो श्रिम्प उत्पादक

तालिका-6

भारतीय श्रिम्प के विकास की संभावनाएं और उपयोग

राज्य	संभावित क्षेत्र (हेक्टेयर)	विकसित क्षेत्र (हेक्टेयर)	श्रिम्प पोषण क्षेत्र (हेक्टेयर)	उत्पादन (टनों में)
पश्चिम बंगाल	405000	45525	42067	18326
उड़ीसा	31600	11332	8000	6000
आंध्र प्रदेश	150000	60249	71000	44856
तमिलनाडु	56000	670	1087	1820
पांडिचेरी	800	22	22	27
केरल	65000	14705	14705	7660
कर्नाटक	8000	3540	3564	2690
गोवा	18500	650	650	590
महाराष्ट्र	80000	970	426	409
गुजरात	376000	997	316	256
योग	1190900	135660	141837	82634

स्रोत: एम.पी.ई.डी.ए., कोचिन

तालिका-7

श्रिम्प निर्यात में जलकृषि का योगदान

	1997-98		1998-99	
	मात्रा मीट्रिक टन	मूल्य (करोड़ रु. में)	मात्रा मीट्रिक टन	मूल्य (करोड़ रु. में)
कुल श्रिम्प निर्यात	101318	3140.56	102484	3349.90
पोषित श्रिम्प (उत्पाद) वजन	43464	2086.00	53300	2491.78
प्रतिशत योगदान	42.90%	66.42%	52.01%	74.49%

किसानों में बेरोजगारी फैल जाएगी और उन्हें खाने के लाले पड़ जाएंगे। आज जलकृषि तटवर्ती मछुआरों को बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान करता है और उनकी आय का मुख्य साधन है। अत: पर्यावरण, प्राकृतिक परिवेश एवं भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल श्रिम्प पालन का विचार मछली उत्पादकों को पूरी तरह से स्वीकार्य है या नहीं, इस पर विचार करना होगा। इन श्रिम्प पालकों की आय का एकमात्र साधन यही है। निश्चय ही हमें बीच का रास्ता तलाशना होगा और संबंधित पक्षों, मछली पालकों, समुद्री खाद्य को संसाधित करने वालों और पर्यावरणशास्त्रियों को विश्वास में लेकर नीति संबंधी निर्णय करना होगा। यह निर्णय लेते समय सभी के हितों और खाद्य सुरक्षा को ध्यान में रखना होगा।

कृषि और मत्स्यपालन

अनेक विकासशील देश अनेक कारणों से मत्स्यपालन को कृषि क्षेत्र से पृथक कर रहे हैं। कृषि कार्य में लाभ की कमी और निर्यात की कोई गुंजाइश न होने के कारण काफी सरकारी सब्सिडी दी जाती है लेकिन मत्स्यपालन में काफी लाभ होता है। एक हेक्टेयर के मछली फार्म से किसान एक सीजन में कम से कम 70,000 रु. कमा सकता है। तथापि, एक हेक्टेयर के श्रिम्प फार्म से दो फसलों में कम से कम 4 टन श्रिम्प पैदा की जा सकती है। इस समय पी. मोनोडोन का दाम 200 रुपये प्रति किलोग्राम है। (यह दाम कम से कम है) इस तरह एक हेक्टेयर फार्म से 8 लाख रु. की आय प्राप्त की जा सकती है। अगर यह मान लिया जाए कि इसमें 4 लाख रु. खर्चा आया था तब भी कुछ लाभ (आय में से खर्च घटाकर) लगभग 3-4 लाख रु. होगी। इस तरह सामान्य मछली पालन से श्रिम्प पालन में बहुत फायदा है। 1998-99 वित्त वर्ष के दौरान हमें समुद्री उत्पादों के निर्यात से पहली बार 5000 करोड़ रु. से अधिक आय हुई। इसमें से 70 प्रतिशत से अधिक आय श्रिम्प निर्यात से हुई। इस संबंध में यह बात भी ध्यान में रखने की है कि यद्यपि मात्रा की दृष्टि से फार्म श्रिम्प निर्यात केवल 52 प्रतिशत था, मूल्यों की दृष्टि से उसका योगदान श्रिम्प और श्रिम्प पर आधारित उत्पादों के निर्यात से होने वाली कुल आय का 75 प्रतिशत था। 90 प्रतिशत श्रिम्प निर्यात पी. मोनोडोन (टाइगर श्रिम्प) किस्म का होता है, जिसकी निर्यात बाजार में अच्छी मांग है। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि श्रिम्प निर्यात से डालर और येन जैसी दुर्लभ विदेशी मुद्रा की आय होती है। योजना को थोड़ा और सुसंगत बनाकर और निवेश को बढ़ाकर देश से समुद्री उत्पादों का निर्यात सन 2005 तक आसानी से 10,000 करोड़ रु. तक बढ़ाया जा सकता है।

सघन मछली पालन और उत्पादन के केंद्रीकरण से बड़े क्षेत्रों में मछली रोगों के फैलने की आशंका बढ़ी है। श्रिम्प रोगों के कारण पश्चिम बंगाल और आंध्र-प्रदेश के अनेक मछली फार्म तबाह हो गए हैं। हमें उत्पादन बनाए रखने के लिए पर्यावरण-अनुकूल ठोस व्यवस्था अपनानी होगी।

क्या हम देश में लाभप्रद मत्स्यपालन चाहते हैं? अगर हां तो हमें एक नया आदर्श या माडल चाहिए। हमें राष्ट्रीय स्तर पर मत्स्यपालन के लिए नया विचार और नया दृष्टिकोण चाहिए, जिसे संस्थागत, कानूनी और अनुसंधान और विकास की व्यवस्था करनी होगी।

भावी आवश्यकताएं

भारत को अपनी भावी मछली संबंधी आवश्यकताएं मुख्य रूप से जलकृषि से प्राप्त करनी होंगी। देश में समुद्री और भीतरी भागों में स्थित मत्स्यपालन केंद्रों का मामूली विकास हुआ है। हम पहले ही लगभग 29 लाख टन मछली पकड़ रहे हैं, जबकि हमारी अनुमानित क्षमता 39 लाख टन है। सन 2005 के लिए हमारी अनुमानित आवश्यकता लगभग 75 लाख टन है जबकि वर्तमान उत्पादन (1999) 58 लाख टन है। अगर हम सन 2005 में जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में रख कर मछली की खपत वर्तमान 9.5 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष (इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट, अहमदाबाद का अनुमान) बनाए रखना चाहते हैं तो हमें कम से कम इतनी मछलियों का उत्पादन करना होगा। ❑

(श्री के. गोपकुमार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली में उप महानिदेशक (मत्स्य) हैं।)

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग वर्तमान परिदृश्य और संभावनाएं

ओमेश सहगल

आगामी दशकों में भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग निश्चित विकास और लाभ के मार्ग पर अग्रसर है। अनुमान है कि अगले दशक में यह उद्योग भारी मात्रा में पूंजी, मानव संसाधन, तकनीकी और वित्तीय निवेश आकर्षित करेगा जिसका मूल्य 1.4 लाख करोड़ रुपये से अधिक होगा।

भारत में वर्ष 1995 में फसलों की पैदावार 60 करोड़ टन हुई थी, जो अमेरिका की 60.8 करोड़ टन पैदावार से मामूली-सी कम थी। इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि चीन के बाद हम विश्व के दूसरे सबसे बड़े खाद्य उत्पादक राष्ट्र हैं। चीन की पैदावार 1995 में 85.6 करोड़ टन रही थी। चीनी, चाय, दूध, फल व सब्जियां और चावल के उत्पादन में हमारा स्थान पहला या दूसरा रहा और इन चीजों के विश्व के कुल उत्पादन में हमारी भागीदारी 10 से 30 प्रतिशत के बीच रही। हमारे संसाधित खाद्य क्षेत्र के उत्पादन का कुल मूल्य 70,000 करोड़ रुपये होने का अनुमान है। वर्ष 2008 तक यह उत्पादन बढ़कर 2,50,000 करोड़ रुपये मूल्य का हो जाने की उम्मीद है।

भारत में फिलहाल 1.2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में बागवानी फसलें उगाई जाती हैं। यह क्षेत्र भारत के कुल फसल क्षेत्र का 7 प्रतिशत है। बागवानी क्षेत्र का वार्षिक उत्पादन 13.1 करोड़ टन होने का अनुमान है, जो देश के कुल कृषि उत्पादन का 18 प्रतिशत है। भारत फल और सब्जियों का सबसे अधिक उत्पादन करने वाले देशों में से एक है। वर्ष 1999-2000 में भारत का फल उत्पादन 4.4 करोड़ टन और सब्जियों का उत्पादन 8.75 करोड़ टन रहा। भारत में सर्वाधिक पशुधन है और मवेशियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में वह पहले स्थान पर है तथा दूध-उत्पादन में उसका दूसरा स्थान है।

पैदावार का यह उज्ज्वल पक्ष है। किंतु, इसका दूसरा पहलू भी है जो इस क्षेत्र में हमारी विफलता का द्योतक है। विशाल उत्पादन और तत्संबंधी हमारी क्षमता बरबाद हो रही है, प्रसंस्करण का स्तर बहुत ही निम्न है और फसल कटाई के बाद अपेक्षित बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। वर्ष 1981 में योजना आयोग के तत्कालीन सदस्य और प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक एम.एस. स्वामीनाथन द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट के अनुसार कुछ फल एवं सब्जियों की पैदावार का 40 प्रतिशत हिस्सा इस वजह से खराब हो जाता है कि उनकी प्रकृति बिगड़ने या गलने-सड़ने की होती है और उपयुक्त सुविधाएं मुहैया नहीं कराई जातीं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के तहत लागत और मूल्यांकन से सम्बद्ध प्रौद्योगिकी सूचना परिषद (टिफैक) द्वारा 1996 में प्रकाशित एक अन्य अध्ययन के अनुसार फसल तैयार होने के बाद कुछ फलों की 30 प्रतिशत तक पैदावार खराब हो जाती है जबकि सब्जियों के मामले में यह 20 से 30 प्रतिशत के बीच है। इसकी वजह भंडारण और यातायात सुविधाओं/बुनियादी ढांचे का अभाव और विपणन की पर्याप्त व्यवस्था न होना है। ब्रिटेन जैसे देश में जितने फलों एवं सब्जियों का उपभोग होता

है उससे कहीं अधिक भारत में बरबाद हो जाती हैं। कुल मिलाकर 50,000 करोड़ रुपये मूल्य की उपज बरबाद हो जाती है। इस बरबादी में से आधी बरबादी भी बचाई जा सके तो गरीबों के पोषक-स्तर को भरण-पोषण स्तर से ऊपर लाने के लिए पर्याप्त कैलोरी मिल सकती है।

भारत में किसानों को फल और सब्जियों के खुदरा मूल्य का मात्र 20 से 30 प्रतिशत ही मिल पाता है। जहां विपणन व्यवस्था अधिक कारगर है और बिचौलियों की संख्या कम है, वहां किसानों को इन फसलों के खुदरा मूल्य का 40 से 50 प्रतिशत तक मिल पाता है। भारत में दुग्ध सहकारी संगठनों ने यह दिखला दिया है कि बिचौलियों की संख्या कम होने से मूल्य प्राप्ति में किसानों की भागीदारी 50 प्रतिशत से बढ़कर 90 प्रतिशत हो सकती है।

भारत के विकास में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का बहुत महत्व है क्योंकि यह उद्योग अर्थव्यवस्था के दो स्तम्भों, यानी उद्योग और खेती के बीच सहक्रियाओं और अनिवार्य संपर्कों को बढ़ावा देता है। सतत प्रयासों के फलस्वरूप यह उद्योग भारत को खाद्य उत्पादन के क्षेत्र में विश्व में पहला स्थान दिलाने की क्षमता रखता है। इस क्षेत्र में विकास की व्यापक संभावनाएं हैं और उम्मीद की जा रही है कि अगले 10 वर्षों में खाद्य उत्पादन दुगुना हो जाएगा और संसाधित खाद्य सामग्री के उपभोग में सुधार आएगा।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास से अर्थव्यवस्था को भारी लाभ पहुंचेगा, खेती की पैदावार बढ़ेगी, उत्पादकता में सुधार आएगा, रोजगार के अवसर पैदा होंगे और देश भर में, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा उठेगा। आर्थिक उदारीकरण और उपभोक्ताओं की बढ़ती खुशहाली से खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में विविधता लाने के नए अवसर पैदा होंगे। विश्व व्यापार के उदारीकरण से भी इस उद्योग के विकास की संभावनाएं और बढ़ेंगी।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की पहचान विकास की संभावनाओं वाले एक क्षेत्र के रूप में की गई है। इस उद्योग को प्राथमिकता ऋण क्षेत्र में शामिल किया गया है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की अधिकतर इकाइयों को उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 के तहत औद्योगिक लाइसेंस के प्रावधान से छूट दी गई है। किंतु बीयर और अल्कोहलयुक्त पेय पदार्थों और लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तुएं, जैसे सिरका, ब्रेड, बेकरी आदि इसका अपवाद हैं। जहां तक विदेशी निवेश का सवाल है, अधिकतर संसाधित खाद्य वस्तुओं के लिए शत-प्रतिशत इक्विटी तक की भी स्वत: स्वीकृति की व्यवस्था की गई है।

भारत के विकास में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का बहुत महत्व है। सतत प्रयासों के फलस्वरूप यह उद्योग भारत को खाद्य उत्पादन के क्षेत्र में विश्व में पहला स्थान दिलाने की क्षमता रखता है। इस क्षेत्र में विकास की व्यापक संभावनाएं हैं और उम्मीद की जा रही है कि अगले 10 वर्षों में खाद्य उत्पादन दुगुना हो जाएगा और संसाधित खाद्य सामग्री के उपभोग में सुधार आएगा।

हाल ही में मेकिन्से एंड कम्पनी द्वारा भारत में संसाधित खाद्य क्षेत्र की संभावनाओं के बारे में किए गए अध्ययन से चौंकाने वाले आंकड़े सामने आए हैं। इससे पता चला है कि हमारे देश में खाद्य उद्योग 2.5 लाख करोड़ रुपये मूल्य को पार कर चुका है। अध्ययन में कहा गया है कि वर्ष 2000 और उसके बाद की अवधि में इस क्षेत्र का व्यापक विकास होगा। सन 2005 तक न केवल खाद्य-प्रसंस्करण उद्योग बढ़कर 5 लाख करोड़ रुपये मूल्य का होने का अनुमान है बल्कि मूल्य संवर्धित खाद्य वस्तुओं का कारोबार वर्तमान 80,000 करोड़ रुपये से बढ़कर 2.25 लाख करोड़ रुपये मूल्य पर पहुंच जाने की उम्मीद है। अध्ययन में कहा गया है कि करीब 20 करोड़ लोग अनाज और दलहन जैसे भरण-पोषण वाले खाद्य पदार्थों को छोड़कर बुनियादी उत्पादों की ओर बढ़ेंगे, जिनमें अधिक प्रसंस्करण की आवश्यकता पड़ेगी। अध्ययन के अनुसार भारत में खाद्य क्षेत्र में अक्षमताओं की वजह 6-7 बिचौलियों का होना है जबिक अन्य देशों में बिचौलिए 2-3 ही होते हैं। हालांकि अध्ययन में संसाधित दूध, कुक्कुट, पैकेजड आटा और बेकरी उत्पादों में कारोबार के प्रमुख अवसरों की खासतौर पर भविष्यवाणी की गई है, लेकिन फलों और सब्जियों को संसाधित करने का उद्योग भी किसी तरह पीछे नहीं रहेगा।

विकास की इन संभावनाओं को हमारे सामाजिक ढांचे में तेजी से हो रहे परिवर्तनों से बल मिला है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, कामकाजी महिलाओं की संख्या बढ़ रही है, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने से खाद्य उपभोग पद्धतियों में विविधता आई है और उच्च मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग का तेजी से विस्तार हो रहा है। इन सब बातों से संसाधित खाद्य पदार्थों को बड़ा बाजार उपलब्ध होगा। इस तरह किसी भी दृष्टि से देखें, आने वाले दशकों में भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग निश्चित विकास और लाभ के मार्ग पर अग्रसर है। अनुमान है कि अगले दशक में यह उद्योग भारी मात्रा में पूंजी, मानव संसाधन, तकनीकी और वित्तीय निवेश आकर्षित करेगा, जिसका मूल्य 1.4 लाख करोड़ रुपये से अधिक होगा।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए सबसे अधिक कच्चा माल पैदा करने वाले देशों में भारत भी एक है, किंतु हमारे यहां अभी तक यह उद्योग अर्ध-विकसित है। भारत में फल एवं सब्जी उत्पादन का 2 प्रतिशत से कम हिस्सा संसाधित किया जाता है, जबकि थाइलैंड में 30, ब्राजील में 70, फिलीपीन्स में 78 और मलेशिया में 80 प्रतिशत फल-सब्जियों की डिब्बाबंदी होती है। खाद्य क्षेत्र में मूल्य संवर्द्धन भी अभी बहुत कम मात्र 7 प्रतिशत है।

पिछले दशक में भारत में खाद्य सामग्री के अभाव की स्थिति समाप्त हो गई और प्रचुर मात्रा में खाद्य उत्पादन होने लगा। फल और सब्जियों का उत्पादन, जो पहले कुल अनाज उत्पादन का मात्र 50 प्रतिशत था, अब बढ़कर अनाज उत्पादन की कुल मात्रा का 66 प्रतिशत हो गया है। अनुमान है कि सन 2010 तक फल एवं सब्जियों का उत्पादन देश में अनाज की कुल पैदावार का 80 प्रतिशत हो जाएगा। अन्य देशों की तुलना में भारत में इन फसलों की पैदावार करीब एक-तिहाई बैठती है, इसे देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस क्षेत्र में विकास की अपार संभावनाएं हैं।

भारत में परिस्थितियां ऐसी हैं कि फल और सब्जियों का 90 प्रतिशत विपणन किसानों द्वारा किया जाता है जबकि अनाज का विपणन उन्हें 20 प्रतिशत से भी कम करना पड़ता है। इससे पता चलता है कि आने वाले दशकों में खाद्य क्षेत्र को जिन प्रमुख चुनौतियों का सामना करना होगा उनमें विपणन सबसे ऊपर है। अभी तक इस क्षेत्र के विकास में सबसे बड़ी बाधा विपणन की ही रही है। अतः नीति निर्धारित करते समय इस पहलू पर ध्यान देना होगा।

इन परिस्थितियों में खाद्य प्रसंस्करण का महत्व बढ़ गया है। इसके जरिए खेत के स्तर पर फालतू सामग्री का सदुउपयोग और उत्पादक को उसका उचित मूल्य सुनिश्चित किया जा सकता है। इससे उपभोक्ता को भी उचित दाम पर उत्पाद उपलब्ध कराए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, रोजगार के अवसर पैदा करने की इस क्षेत्र की क्षमता अन्य क्षेत्रों से अधिक है, क्योंकि खाद्य क्षेत्र में प्रत्येक 10 अरब रुपये के निवेश पर 54,000 लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार मिलता है जबकि इसकी तुलना में इतने ही निवेश पर वस्त्र उद्योग में 48,000 लोगों को और कागज उद्योग में 25,000 लोगों को सीधे रोजगार मिलता है। खाद्य क्षेत्र में निवेश से अनुषंगी और निचले स्तर की गतिविधियों में परोक्ष रोजगार के अवसर भी चार गुना अधिक हैं। इतना ही नहीं इस उद्योग से 60 प्रतिशत रोजगार के अवसर छोटे कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों में पैदा हुए हैं।

अभी तक खाद्य क्षेत्र के विकसित न होने का बुनियादी कारण यह था कि कृषि को ज्यादातर जीवन-निर्वाह के लिए अपनाया गया और उसे बाजारोन्मुखी नहीं बनाया गया। यही वजह रही कि प्रसंस्करण के लिए पर्याप्त अतिरिक्त सामग्री नहीं बचाई जा सकी और फसलों की पैदावार कम होने का भी इस पर विपरीत असर पड़ा। कच्चे माल की संसाधित की जा सकने वाली किस्म के बारे में जागरूकता का अभाव और आकार, रंग, संरचना आदि के संदर्भ में उपयुक्त कच्चा माल उपलब्ध न होने से प्रसंस्कृत की जाने वाले किस्मों का अभाव बना रहा। वर्तमान कर-संरचना की वजह से भी संगठित क्षेत्र विनिर्मित बैंडिड उत्पादों और असंगठित क्षेत्र के उत्पादों के बीच एक विभाजक रेखा खिंच जाती है। वास्तव में भारत में प्रसंस्कृत खाद्य सामग्री पर कर दरें दुनिया भर में सबसे ज्यादा हैं। इससे स्थानीय और विदेशी दोनों ही हलकों से निवेश आकर्षित करने में रुकावट आती है। ये अड़चनें इस तथ्य से और बढ़ जाती हैं कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में निवेश अधिक जोखिमपूर्ण है और लाभ प्राप्ति के अवसर कम हैं। निवेश को इस बात से भी धक्का पहुंचता है कि भारतीय

उपभोक्ता मूल्यों के प्रति संवेदनशील होते हैं और अधिक मूल्य वाली पैकेजड् खाद्य सामग्री नहीं खरीदते।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मौसम पर आधारित होने के कारण भी इसमें जोखिम अधिक और लाभ की संभावना कम रहती है। कच्चा माल समय पर उपलब्ध न होना, प्रचुरता के समय अधिक खरीदने की मजबूरी से संपत्ति लागत अधिक होना और पैकेजिंग पर अधिक खर्च आना, जो उत्पाद मूल्य का करीब 40 फीसदी होता है, आदि बातों का भी इस उद्योग पर विपरीत असर पड़ता है। अंततः बुनियादी सुविधाओं के अभाव का मुद्दा भी सामने आते है, जैसे कोल्ड चेन (शीत भंडारण श्रृंखला), सड़कों, बिजली आदि के अभाव की वजह से भी प्रसंस्करण उद्योग का विकास नहीं हो पाता।

इस बात की परम आवश्यकता है कि खाद्य प्रसंस्करण को वर्तमान 2 प्रतिशत से बढ़ाकर सन 2010 तक 10 प्रतिशत पर पहुंचाने का लक्ष्य निर्धारित किया जाए। इसके लिए खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में 1,40,000 करोड़ रुपये का निवेश करना होगा। इस निवेश से 77 लाख लोगों के लिए प्रत्यक्ष और करीब 3 करोड़ लोगों के लिए परोक्ष रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकेंगे। इससे करीब 8000 करोड़ रुपये मूल्य के संसाधनों की बरबादी रोकी जा सकेगी। इन फायदों के अलावा खाद्य उत्पादों का मूल्य संवर्द्धन 7 फीसदी से बढ़कर 35 फीसदी हो जाएगा और तदनुरूप सकल घरेलू उत्पाद में भी बढ़ोतरी होगी। अतः जोर इस बात पर देना होगा कि विदेशी और घरेलू निवेश आकर्षित किया जाए और उपरोक्त मात्रा में पूंजी एकत्र करने के लिए आंतरिक संसाधन उपार्जित किए जाएं। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि 1991-92 में जब इस उद्योग को लाइसेंसमुक्त किया गया और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) के मार्ग की प्रमुख बाधाएं दूर की गईं तो उसके बाद शुरू के कुछ वर्षों में कुल 7200 करोड़ रुपये मूल्य का निवेश प्राप्त हुआ। यह सिलसिला 1997-98 में उस समय भंग हुआ जब पहली बार उत्पाद शुल्क शुरू किया गया।

इस बात की परम आवश्यकता है कि खाद्य प्रसंस्करण को वर्तमान 2 प्रतिशत से बढ़ाकर सन 2010 तक 10 प्रतिशत पर पहुंचाने का लक्ष्य निर्धारित किया जाए। इसके लिए खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में 1,40,000 करोड़ रुपये का निवेश करना होगा। इस निवेश से 77 लाख लोगों के लिए प्रत्यक्ष और करीब 3 करोड़ लोगों के लिए परोक्ष रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकेंगे। साथ ही करीब 8000 करोड़ रुपये मूल्य के संसाधनों की बरबादी रोकी जा सकेगी।

नाना प्रकार के कानूनों और विविध एजेंसियों की विद्यमानता भी इस उद्योग के मार्ग में बड़ी रुकावट है। इनमें खाद्य मिलावट रोकथाम अधिनियम जैसे अनेक कानून ऐसे हैं, जिन्हें करीब 50 वर्ष पहले बनाया गया था और उनका लक्ष्य खाद्य सुरक्षा प्रदान करना तथा मिलावट रोकना था। इसी तरह कई विधायी आदेश ऐसे हैं जो अनिवार्य वस्तु अधिनियम के तहत उस समय जारी किए गए थे, जब खाद्य वस्तुओं की गंभीर कमी थी, जैसे फल उत्पाद आदेश, मांस और मांस उत्पाद आदेश तथा दूध और दुग्ध उत्पाद आदेश। उदारीकरण के संदर्भ में ये कानून विकास के मार्ग में बाधक हैं और इस उद्योग को मंदी के रास्ते पर ले जाते हैं। अतः इस बात की सख्त जरूरत है कि वर्तमान खाद्य कानूनों को संतुलित बनाया जाए और विकासोन्मुखी रूप दिया जाए ताकि यह उद्योग तेजी से फल-फूल सकें।

ऐसा दृष्टिकोण अपनाने से कार्पोरेट जगत में एकीकृत खाद्य प्रबंध-बनाम-वितरक बड़ी कंपनियां आगे आएंगी, जो खेत से लेकर डिपार्टमेंट स्टोर तक सक्रिय होंगी। बदली परिस्थितियों में लघु उद्योगों को समुचित सुरक्षा देने की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि अधिकांश खाद्य प्रसंस्करण इकाइयां लघु उद्योग क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं। उन्हें समुचित संरक्षण देने के लिए बड़ी औद्योगिक कंपनियों को आश्रयदाता की भूमिका का निर्वाह करना होगा। इसके अलावा बड़ी संख्या में खाद्य परिसर (फूड पार्क) स्थापित किए जा सकते हैं ताकि अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप सामान्य सुविधाएं जुटाने में समुचित मदद की जा सके। बड़े/आश्रयदाता उद्योग प्राथमिक और गौण स्तर की संसाधित वस्तुओं के विपणन में लघु उद्योगों की मदद

करेंगे। साथ ही उन वस्तुओं को मूल्यसंवर्द्धित उत्पादों में परिवर्तित करेंगे ताकि उन्हें निर्यात सहित वितरण के विभिन्न चैनलों के नेटवर्क के जरिए बेच सकें।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को 10 वर्ष की अल्पावधि के लिए करों से मुक्ति (टैक्स-हॉलिडे) प्रदान करके एक सक्षम वातावरण तैयार किया जा सकता है जिसमें घरेलू और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश दोनों समुचित मात्रा में आकर्षित किए जा सकते हैं। इस तरह की कर-मुक्ति में तम्बाकू, वातित पेय, भारत में बनने वाली विदेशी शराब और बागान वस्तुओं को शामिल करने की कोई आवश्यकता नहीं है। संसाधित खाद्य विकास अधिनियम बनाने और प्रजातिगत प्रोत्साहन जैसे उपाय भी किए जा सकते हैं। अगले 3 वर्ष की अल्पावधि के दौरान एक मजबूत आंकड़ा आधार और विपणन गुप्तचर नेटवर्क विकसित करने के प्रयास भी किए जाने चाहिए। इसके अलावा पूर्वोत्तर क्षेत्रों, पर्वतीय क्षेत्रों, द्वीपों, आई.टी.डी.पी., रेगिस्तानी इलाकों और अन्य दुर्गम क्षेत्रों के विकास के लिए भी विशेष प्रावधान करने होंगे।

5 से 10 वर्ष की मध्यावधि में अनुसंधान एवं विकास संस्थानों का नेटवर्क स्थापित करने के नीतिगत उपाय किए जाने चाहिए। आश्रयदाता औद्योगिक कंपनियों की पहचान और सभी राज्यों में उनके क्षेत्रीय सामर्थ्य के अनुसार खाद्य परिसरों (फूड पार्कों) का विकास इस अवधि के दौरान किया जा सकता है। शीत भंडारण शृंखला और विकास संबंधी ढांचे की स्थापना, नई प्रौद्योगिकी का विकास और हस्तांतरण और उत्पाद के अनुसार विशेष पैकेजिंग, संसाधित किए जाने योग्य समुचित कच्चे माल का विकास, भावी व्यापार के लिए कोष और संस्थानों के नेटवर्क की स्थापना तथा भारतीय उत्पादों को अंतर्राष्ट्रीय मानकों पर परखने हेतु परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना जैसे उपाय करने के लिए उपयुक्त नीतियां और कार्यक्रम अपनाए जा सकते हैं। खाद्य प्रसंस्करण के लिए इरेडिएशन (किरणन) और जैव प्रौद्योगिकी जैसी सस्ती और प्रदूषणमुक्त प्रौद्योगिकी का प्रचार करने की आवश्यकता है।

इस नीति की एक महत्वपूर्ण देन खाद्य प्रसंस्करण विकास अधिनियम है। प्रस्तावित अधिनियम में प्रत्येक घटक के कार्य को संतुलित रूप देने और उसे स्पष्ट करने के लिए एक ही एजेंसी की व्यवस्था है। भारतीय खाद्य प्रसंस्करण विभाग (एफ.पी.आई.) की भूमिका विकास की होगी जबकि खाद्य सुरक्षा, वितरण और अन्य विधायी कार्य वर्तमान कानूनों के तहत कराए जाते रहेंगे। प्रस्तावित अधिनियम में वर्तमान कानूनों के विधायी स्वरूप की बजाय विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा। इसमें समूचे खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के विकास, गुणवत्ता युक्त सामान की अवधारणा और अच्छा सामान बनाने वाले उद्योगों को प्रोत्साहन, समकरण कोष (इक्वॅलाइजेशन फंड) और मूल्य स्थिरता के लिए वायदा कारोबार तथा आनुवांशिक दृष्टि से परिष्कृत वस्तुएं और उनके प्रति सरकार के दायित्व पर बल दिया जाएगा। खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में नीतियों और दिशा-निर्देशों, चाहे वे मानव संसाधन विकास, अनुसंधान और विकास, कराधान या विनियमों से संबद्ध हों, पर भी व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता पड़ेगी।

सार रूप में कहा जा सकता है कि खाद्य प्रसंस्करण के वर्तमान-स्तर से भले ही परंपरागत ग्रामीण विपणन ढांचे का बोध होता हो, लेकिन इस क्षेत्र में सुधारों से कृषि उत्पादों के मूल्य-संवर्द्धन में व्यापक प्रगति की जा सकती है, रोजगार के नए अवसर, खासकर छोटे कस्बों और ग्रामीण इलाकों में पैदा किए जा सकते हैं, निर्धनों और ग्रामीण महिलाओं के पोषाहार स्तर में सुधार लाया जा सकता है तथा उपभोक्ताओं को सस्ते और बेहतर उत्पाद उपलब्ध कराए जा सकते हैं। दुनिया भर में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को उदीयमान उद्योग समझा जा रहा है, जिसमें भारी मात्रा में स्थानीय और विदेशी पूंजीनिवेश आकर्षित करने की क्षमता है। इस निवेश से न केवल उद्योगीकरण की गति में तेजी आएगी बल्कि ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे में सुधार आएगा। भली-भांति संचालित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग यह सुनिश्चित करेगा कि उत्पादक को उसके उत्पाद का लाभकारी मूल्य मिले, और उपभोक्ता को उच्च और निश्चित गुणवत्तायुक्त चीजों के लिए कम दाम चुकाना पड़े। कर-मुक्ति के रूप में सरकारी खजाने को कुछ करोड़ रुपये का नुकसान अवश्य भुगतना पड़ेगा किंतु उसकी भरपाई अतिरिक्त निवेश-प्रवाह और सरकार के राजस्व संसाधनों में दीर्घकालिक लाभ से जरूर हो जाएगी। ❑

(श्री ओमेश सहगल खाद्य प्रसंस्करण उद्योग विभाग, नई दिल्ली में सचिव हैं।)

फसल बीमा और राष्ट्रीय कृषि नीति

सुरिन्दर सूद

लघु-क्षेत्र-फसल-अनुमान दृष्टिकोण की सफलता से जहां एक नाजुक बाधा दूर हो जाएगी वहीं कृषि कार्य से जुड़े अन्य खतरे उसी प्रकार बने रहेंगे। अतः कृषि खतरों से बचाव के लिए फसल बीमा की एक व्यावहारिक योजना लागू करने से पहले इन बाधाओं को दूर करना होगा।

किसान का अपनी फसल के उत्पादन और बिक्री को नियंत्रित करने वाले कारणों पर कोई नियंत्रण नहीं होता, इस दृष्टि से कृषि सबसे खतरनाक उद्यमों में एक है। खेती पर न केवल प्रतिकूल मौसम का प्रभाव पड़ता है बल्कि इसे अन्य अनेक कारण, जैसे, कीड़े, बीमारी, पक्षी, जंगली जानवर और कृत्रिम एवं प्राकृतिक आपदाएं, जैसेकि बाढ़, सूखा, तूफान, आग आदि भी प्रभावित करते हैं। अतः इस तरह की गतिविधियों के लिए प्रभावी बीमा योजना शुरू करना आसान काम नहीं है। वर्षों से उद्योगों और अन्य किस्म के व्यवसायों को बीमा सुरक्षा प्रदान करने वाली कम्पनियां अपने लंबे अनुभव के बावजूद अधिक जोखिम के कारण कृषि बीमा का काम हाथ में लेने को तैयार नहीं होती।

राष्ट्रीय कृषि नीति में खेती के जोखिम भरे स्वरूप को पर्याप्त तरीके से स्वीकार किया गया है और वादा किया गया है कि इस जोखिम को दूर करने के लिए उपयुक्त सुरक्षा कवच प्रदान किया जाएगा। कृषि नीति में साफ शब्दों में कहा गया है, "तकनीकी और आर्थिक प्रगति के बावजूद प्राकृतिक आपदाओं और मूल्यों में उतार-चढ़ाव के कारण किसानों की स्थिति डांवाडोल बनी हुई है।"

कृषि नीति में यह भी कहा गया है कि देश भर के सभी किसानों और सभी फसलों पर लागू होने वाली राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना को किसानों के लिए अधिक उपयोगी और प्रभावी बनाया जाएगा। इसमें इस तरह की व्यवस्था की जाएगी कि प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों को वित्तीय कष्ट का सामना न करना पड़े और खेती का व्यवसाय किसानों के लिए लाभप्रद हो।

इस नीति में खेती के जोखिम को कम करने और उसे स्थिति की मांग के अनुसार बनाने के लिए अन्य अनेक उपाय करने की भी चर्चा की गई है। इन उपायों में शामिल हैं बाढ़ से बचाव, सूखे से बचाव, जलग्रहण क्षेत्रों का विकास, सूखा पीड़ित क्षेत्रों का विकास, कृषि उत्पादों की बाजार में खरीद करके उनके मूल्यों को स्थिरता प्रदान करने और घाटे से बचाने के लिए वायदे के सौदे। तथापि अप्रत्याशित कारणों और परिस्थितियों के कारण किसानों के नुकसान की भरपाई के लिए बीमा सबसे कारगर उपाय है। दो विकसित अर्थव्यवस्थाओं— अमेरिका और ब्रिटेन को छोड़ कर किसी अन्य देश में फसल बीमा से जुड़ी एजेंसियां नहीं हैं। विकासशील देशों में भारत पहला देश है जिसने किसानों को यह सुविधा देने का प्रयास किया है। तथापि फसल बीमा के क्षेत्र में 1985 में इसे पहली बार लागू करने के बाद अनेक प्रयोग किए गए हैं।

केन्द्र में विभिन्न सरकारें फसल

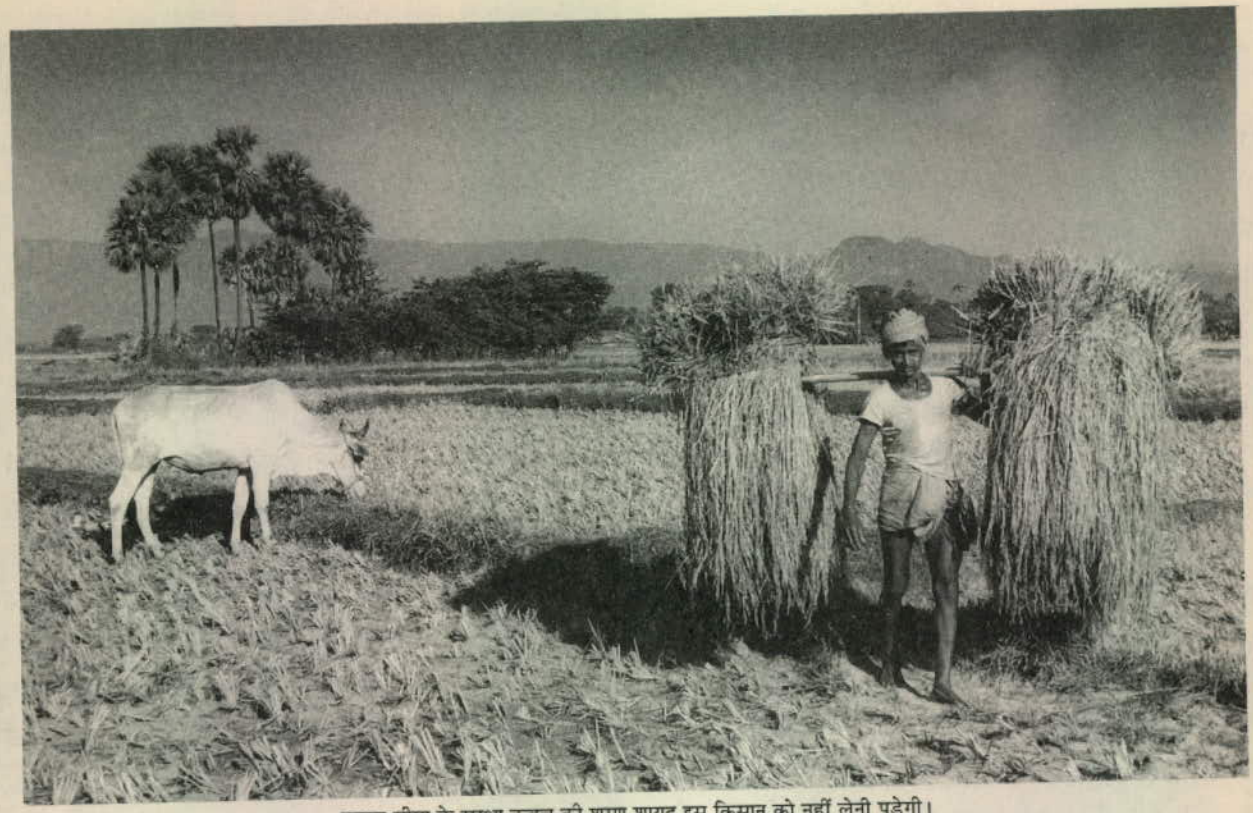

फसल बीमा के सुरक्षा कवच की शरण शायद इस किसान को नहीं लेनी पड़ेगी।

बीमा योजना में बदलाव करती रही हैं और इसे अलग-अलग नाम देती रही हैं, जैसे कि व्यापक फसल बीमा योजना, प्रयोगात्मक फसल बीमा योजना, आदि। संपूर्ण प्रयोग का उद्देश्य मूल रूप से एक ऐसा माडल तैयार करना है जो आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक या लाभप्रद हो, प्रशासकीय दृष्टि से जिसे लागू किया जा सके और जो सबसे ऊपर किसानों के हितों की रक्षा कर सके। लेकिन अभी तक इन उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सका है।

फसल बीमा की नवीनतम योजना जिसे 'राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना' नाम दिया गया है, 22 जून, 1999 को शुरू की गई और उसे 1999 की रबी की फसल से लागू किया गया। इस योजना में पिछले अनुभव से लाभ उठाने की पूरी कोशिश की गई। इसे संबंधित मंत्रालयों और एजेंसियों के साथ काफी विचार-विमर्श और कई माडलों का अध्ययन करने के बाद बनाया गया। यह योजना केवल फसल बीमा योजना नहीं थी, बल्कि कृषि बीमा योजना थी जिसके अंतर्गत अंततः सभी कृषि आधारित और कृषि संबंधित ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उद्यम, जैसे कि पशु पालन, मुर्गी पालन, सूअर पालन, बकरी पालन, मधुमक्खी पालन आदि आ जाने थे।

पहले शुरू की गई फसल बीमा योजनाएं क्यों विफल हुईं, उसके कारणों का पता लगाने के लिए बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। उनमें कुछ बुनियादी कमियां थीं। इसके अलावा वे किसानों को बहुत कम सुरक्षा प्रदान करती थीं। वे केवल चुनी हुई फसलों—गेहूं, धान, तिलहन, मोटा अनाज और दालों को बीमा सुरक्षा प्रदान करती थीं। नकदी फसलें, जिन्हें लगाने आदि में अधिक लागत आती है और अधिक जोखिम रहता है, उन्हें योजना के अंतर्गत नहीं लाया गया था। इसके अलावा बीमा का लाभ केवल बारानी फसलों को दिया गया। इन दो प्रावधानों के कारण पुरानी योजना देश के कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण राज्यों के प्रगतिशील (नई विधियां अपनाने को तैयार) किसानों के लिए हद से बाहर और अनाकर्षक हो गईं।

पुरानी योजनाओं का अधिकार क्षेत्र भी बहुत सीमित था क्योंकि वे केवल उन छोटे और बहुत छोटे किसानों पर लागू होती थीं जिन्होंने वित्तीय संस्थाओं, जैसे कि ऋण

सहकारियों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और वाणिज्यिक बैंकों से ऋण प्राप्त किए थे। बीमा की राशि फसल के लिए प्राप्त किए गए वास्तविक ऋण, जो 10,000 रुपये की राशि से अधिक नहीं हो सकता था, तक सीमित थी। इस कारण एक तरह से यह फसल बीमा योजना न होकर केवल ऋण बीमा योजना बन गई। और फिर यह योजना केवल थोड़े से छोटे और बहुत छोटे किसानों तक सीमित थी। प्रभावित किसानों को देय मुआवजे का उन्हें हुए नुकसान से कोई सीधा संबंध नहीं था। वस्तुत: ये केवल ऋण बीमा योजनाएं थीं न कि जोखिम बीमा योजनाएं। इनमें मुख्य व्यवस्था किसानों द्वारा लिए गए ऋणों के भुगतान की थी। किसानों को उनकी फसल में हुए नुकसान का मुआवजा देने की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसके अलावा ये योजनाएं इस तरह तैयार की गईं थीं कि वे पूरी तरह सरकार के समर्थन पर निर्भर थीं। उनमें अपने बल पर खड़े होने की क्षमता नहीं थी। प्रीमियम दरें मनमाने तरीके से निर्धारित की गई थीं। उन्हें निर्धारित करते समय वास्तविक स्थिति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। गेहूं, धान और मोटे अनाज का प्रीमियम दो प्रतिशत और तिलहन, दालों का एक प्रतिशत निर्धारित किया गया था। किसानों को आधा प्रीमियम देने के लिए राज्य और केन्द्र सरकार बराबर-बराबर आर्थिक अनुदान (सब्सिडी) प्रदान करती थीं। क्षतिपूर्ति दावे का भुगतान संबंधित राज्य सरकार और केन्द्र सरकार 2:1 के अनुपात में बांट कर करती थीं।

इसके परिणामस्वरूप खरीफ 1999 तक सरकार को 1900 करोड़ रुपये से अधिक क्षतिपूर्ति दावे के रूप में देने पड़े जबकि प्रीमियम से आय मात्र 403 करोड़ रुपये हुई। अत्यधिक प्रतिकूल प्रीमियम के कारण, दावों के अनुपात में जो 1:5 था, परियोजनाएं वित्तीय संकट में पड़ गईं। अधिकांश राज्य सरकारों ने पाया कि वे इस आर्थिक बोझ को उठाने में सर्वथा असमर्थ हैं।

प्रयोगात्मक फसल बीमा योजना, 1997 में पुरानी योजनाओं की कुछ कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया। इसे सभी छोटे और बहुत छोटे किसानों पर, चाहे उन्होंने ऋण लिया हो या नहीं, लागू किया गया। लेकिन इसकी वित्तीय लाभप्रदता बढ़ाने या इसे आत्मनिर्भर बनाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वास्तव में स्थिति को और बिगाड़ने के लिए बीमा का संपूर्ण खर्च उठाने का भार सरकार पर डाल दिया गया। यह निर्धारित किया गया कि केन्द्र और राज्य सरकारें इस भार को 8:2 के अनुपात में वहन करेंगी। नतीजा यह हुआ कि केन्द्र सरकार तक को लगा कि उस पर अत्यधिक भार डाल दिया गया है। अत: इसे फसल के एक मौसम में आजमाने के बाद समाप्त कर दिया गया।

साहसिक प्रयास

तथापि राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना ने इनमें से अधिकांश समस्याओं को हल करने का साहसिक प्रयास किया। प्रतीत होता है कि उसने वित्तीय लाभप्रदता प्राप्त करने के पहलू की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रीमियम दरें पिछली फसल उत्पादन के आंकड़ों को ध्यान में रखकर बीमांकित आधार पर तैयार की गई। योजना में राज्यों को देनदारियों के भुगतान में 1:1 के आधार पर बराबर का भागीदार बनाया गया। योजना में यह निश्चित किया गया कि प्रशासन खर्च केन्द्र और राज्य सरकारें 50:50 के आधार पर वहन करें।

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना को भारतीय सामान्य बीमा निगम ने इस प्रावधान के साथ कार्यान्वित किया कि इस कार्य के लिए बाद में एक विशेष संगठन, भारतीय कृषि बीमा निगम बनाया जाएगा। साथ ही योजना की लाभ- प्रदता सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्बीमा 'कवर' या कवच प्राप्त करने का भी विचार था।

बीमा का क्षेत्र व्यापक कर दिया गया। अब सभी किसान, चाहे उनकी जोत का आकार जो भी हो, उसका लाभ उठा सकते थे। जहां वित्तीय संस्थानों से फसल उत्पादन ऋण लेने वाले किसानों के लिए बीमा कराना अनिवार्य था, अन्य लोगों के लिए इसमें भाग लेना वैकल्पिक था। कुल बीमाकृत राशि की कोई सीमा नहीं थी।

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के अंतर्गत सभी फसलों पर बीमे का लाभ प्राप्त किया जा सकता था। यद्यपि प्रारंभ में योजना केवल मोटे अनाज सहित अनाज की फसलों, सभी किस्म की दालों और तिलहनों और तीन नगदी फसलों—गन्ना, आलू और कपास पर लागू थी। अगले तीन वर्षों के दौरान इसे शेष वाणिज्यिक फसलों और फलों पर लागू किया जाना था।

विभिन्न फसलों के लिए अस्थायी आधार पर प्रीमियम

दरें 1.5 से लेकर 3.5 प्रतिशत तक निर्धारित की गईं। उन फसलों का प्रीमियम अधिक रखा गया जिन्हें खतरा अधिक था। कम खतरे वाली फसलों का बीमा कम रखा गया। शुरू में बाजरा एवं तिलहन फसलों के लिए 3.5 प्रतिशत, खरीफ की अन्य फसलों के लिए 2.5 प्रतिशत, रबी की फसलों के लिए 2 प्रतिशत और गेहूं की फसल के लिए 1.5 प्रतिशत प्रीमियम निर्धारित था अंततः प्रीमियम दरें फसल कटाई प्रयोगों में एकत्र उत्पादन आंकड़ों को ध्यान में रख कर तय की जाएंगी।

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना आर्थिक दृष्टि से चल सके, यह सुनिश्चित करने के लिए प्रीमियम की बीमांकित दरें पांच वर्ष में लागू की जाएंगी। अगर बीमांकित आंकड़ों के आधार पर निकाली गई दरें निर्धारित दरों से कम होंगी तो कम दरें लागू की जाएंगी। वाणिज्यिक और फलों की फसलों के मामलों में यह प्रस्ताव है कि योजना के शुरू से ही बीमांकित दरें वसूल की जाएं। यद्यपि योजना में छोटे और बहुत छोटे किसानों को 50 प्रतिशत सब्सिडी देने का प्रस्ताव है, इसे पांच वर्ष में समाप्त कर दिया जाएगा।

इस योजना को क्षेत्रीय आधार पर चलाने का प्रस्ताव है। किसी आपदा से प्रभावित परिभाषित क्षेत्र के सभी किसान बीमा-दावा पाने के अधिकारी होंगे। उन्हें उस क्षेत्र के क्षति-पूर्ति दावे की दरों के अनुसार क्षेत्र की औसत विशेष उपज के स्तर पर दावे का भुगतान किया जाएगा। स्थानीय आपदाओं, जैसे कि ओलावृष्टि, भूस्खलन (जमीन का धंसना, खिसकना), तूफान, बाढ़ आदि के मामलों से प्रभावित किसानों के निजी दावों पर विचार किया जाएगा। प्रगतिशील किसानों को जो आमतौर पर बढ़िया फसल प्राप्त करते हैं, अधिक प्रीमियम देकर अधिक मुआवजे के लिए बीमा कराने का विकल्प प्रदान किया गया। दावों का भुगतान बीमा एजेंसी की जिम्मेदारी है जिसे नई फसल का मौसम शुरू होने से पहले सभी मामलों को निपटाना होगा।

नई योजना की विशेषताएं इस तरह तय की गईं कि दावों के साथ प्रीमियम का अनुपात अधिक चलाने योग्य 1:14 या इससे भी कम स्तर पर रखा जा सके। इसके अतिरिक्त अनुभव से लाभ उठाकर सरकार ने सामान्य बीमा निगम की सहायक कम्पनी को इस बात की स्वतंत्रता प्रदान की कि वह विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार बीमा शुल्कों में बदलाव या उनमें परिवर्तन कर सके। उद्देश्य यह है कि नई बीमा योजना को लाभप्रद बनाया जाए ताकि वह नियत उद्देश्य को पूरा कर सके।

अधिकांश राज्य चाहते हैं कि लागत और देनदारी के बंटवारे के संबंध में राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना 1:1 अनुपात के स्थान पर पुराने 2:1 अनुपात को स्वीकार कर ले। इससे केन्द्र सरकार की देनदारी काफी बढ़ जाएगी। प्रारंभिक वर्षों के दौरान जब तक छोटे और बहुत छोटे किसानों के लिए सब्सिडी समाप्त नहीं कर दी जाती, यह विशेष रूप से अधिक होगी।

तथापि यद्यपि राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना तकनीकी तौर पर अभी भी काम कर रही है, उसे अनेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इससे मजबूर होकर सरकार को उसमें उपयुक्त संशोधन करने पड़े हैं। केवल 14 राज्यों और एक संघशासित क्षेत्रों ने इन्हें लागू करने की इच्छा प्रकट की है। ये हैं : आंध्रप्रदेश, असम, बिहार, गोवा, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मेघालय, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर- प्रदेश, पांडिचेरी और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह। अनेक राज्यों ने जिनमें कुछ वे राज्य भी शामिल हैं जिन्होंने योजना के विभिन्न प्रावधानों के बारे में कुछ संदेह व्यक्त किए हैं, विवाद के मुख्य मुद्दों में शामिल हैं : क्षति-पूर्ति दावों के हिसाब के मद्देनजर वित्तीय देनदारियों का बंटवारा, निकाय निधि और प्रशासनिक व्यय; नुकसान का मूल्यांकन करने के लिए फसल की उपज के आंकड़ों की कसौटी; बाग-बगीचों की फसलें और बीमा यूनिट के लिए समझे जाने वाले क्षेत्र का विस्तार।

अधिकांश राज्य चाहते हैं कि लागत और देनदारी के बंटवारे के संबंध में राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना 1:1 अनुपात के स्थान पर पुराने 2:1 अनुपात को स्वीकार कर ले। इससे केन्द्र सरकार की देनदारी काफी बढ़ जाएगी। प्रारंभिक वर्षों के दौरान जब तक छोटे और बहुत छोटे किसानों के लिए यह सब्सिडी समाप्त नहीं कर दी जाती, यह विशेष रूप

से अधिक होगी। इस विषय में राज्यों और केन्द्र के बीच सलाह-मशवरे की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है।

कुछ राज्यों, विशेष रूप से गुजरात में राष्ट्रीय बीमा योजना के उस प्रावधान पर संदेह व्यक्त किया है जिसमें किसानों को वाणिज्यिक दरों पर अधिक प्रीमियम देकर अधिसूचित क्षेत्र के औसत दर से 150 प्रतिशत तक पर बीमा कराने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस बात पर विचार करते हुए कि किसी क्षेत्र विशेष में फसल के पूरी तरह नष्ट हो जाने पर केन्द्र और राज्य सरकारों पर काफी वित्तीय भार पड़ेगा, गुजरात राज्य चाहता है कि बीमा राशि की अधिकतम सीमा 50,000 रुपये तक कर दी जाए।

सदा या बारहमासी फसलों, जैसे कि सेब, आम, नारियल और अन्य बागवानी फसलों को, जो हिमाचल प्रदेश और केरल में बड़े पैमाने पर उगाई जाती हैं, बीमा कवच प्रदान करने के बारे में भी कठिनाइयां हैं। जहां वार्षिक फसलों के मामलों में फसल का नुकसान होने पर केवल उस मौसम की उपज का नुकसान होता है, बारहमासी फसलों के मामले में उस मौसम की उपज और पेड़ दोनों को नुकसान हो सकता है। पेड़ों को नुकसान होने पर भावी उपज भी प्रभावित होती है। इस तरह के नुकसान का मूल्यांकन करना फसल का मूल्यांकन करने की अपेक्षा बहुत कठिन होता है, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि बागानों (बाग-बगीचों) की उत्पादकता में उनकी आयु, पेड़ों की किस्म की विविधता और अन्य कारणों से काफी अंतर होता है। इस समस्या का समाधान है नुकसान का मूल्यांकन करने के लिए पर्याप्त आंकड़ों का संग्रह।

इन सभी समस्याओं में सबसे जटिल समस्या जिसका सामना राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना को करना पड़ रहा है, वह है औसत फसल की उपज का अनुमान लगाना जो फसल को हुए नुकसान का हिसाब लगाने के लिए आधार बनेगा क्योंकि योजना में बीमा की यूनिट ग्राम पंचायत को बनाया गया है। अत: यह जरूरी है कि ग्राम पंचायत स्तर पर आंकड़ों का भंडार बनाया जाए। इन आंकड़ों के संग्रह के लिए योजना के अंतर्गत हर पंचायत क्षेत्र में कम से कम आठ फसल कटाई प्रयोग निर्धारित किए गए हैं जो तीन वर्ष में ये आंकड़े एकत्र करेंगे। इस प्रावधान को लागू करने में काफी खर्च आएगा। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों का कहना है कि उनके पास औसत फसल उपज के आंकड़े एकत्र करने के लिए इतने अधिक फसल कटाई प्रयोग करने के वास्ते आवश्यक श्रमशक्ति और बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं। इस समय देश में सामान्य फसल अनुमान सर्वे व्यवस्था के अंतर्गत लगभग पांच लाख फसल कटाई प्रयोग किए जाते हैं। इसे भी एक कठिन भार समझा जाता है। प्रस्तावित व्यवस्था में योजना में शामिल 16 राज्यों में 74 लाख फसल कटाई प्रयोगों की आवश्यकता होगी। इसे व्यावहारिक और वित्तीय दृष्टि से असंभव समझा जाता है। इससे अपेक्षाकृत सस्ता विकल्प नई दिल्ली स्थित भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान ने तैयार किया है। इसका नाम है 'लघु क्षेत्र फसल अनुमान दृष्टिकोण'। इस फार्मूले के अंतर्गत वर्तमान फसल अनुमान सर्वेक्षण आंकड़ों को विभिन्न सूत्रों से प्राप्त अतिरिक्त सूचना का इस्तेमाल करके छोटे क्षेत्र के स्तर में लाया जा सकता है। लघु-क्षेत्र-फसल-अनुमान दृष्टिकोण ने सुझाव दिया है कि इस दृष्टिकोण को बड़े पैमाने पर अपनाने से पहले आजमाइशी आधार पर परखा जाए। केन्द्र सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और बीमा योजना में भाग लेने वाले राज्यों के कम से कम एक जिले में आजमाइशी परियोजना के परीक्षण सन 2000 की रबी फसल से शुरू हो जाएंगे।

लघु-क्षेत्र-फसल-अनुमान दृष्टिकोण ने सुझाव दिया है कि इस दृष्टिकोण को बड़े पैमाने पर अपनाने से पहले आजमाइशी आधार पर परखा जाए। केन्द्र सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और बीमा योजना में भाग लेने वाले राज्यों के कम से कम एक जिले में आजमाइशी परियोजना के परीक्षण सन 2000 की रबी फसल से शुरू हो जाएंगे।

इस फार्मूले की सफलता से एक निर्णायक बाधा तो दूर हो जाएगी किंतु अन्य बाधाएं फिर भी मौजूद रहेंगी। खेती के जोखिमों को समाप्त करने की कोई व्यावहारिक फसल बीमा योजना तब तक शुरू नहीं की जा सकती जब तक इन बाधाओं को दूर न कर लिया जाए। ❑

(श्री सुरिन्दर सूद 'बिजनेस स्टैंडर्ड' के कृषि सम्पादक हैं।)

बीज विकास और बौद्धिक संपदा अधिकार

एस. प्रकाश तिवारी

देश में कृषि की निरंतरता बनाए रखने के हमारे प्रयास में सफलता की महत्वपूर्ण कुंजियों में से एक यह है कि देश में विश्वस्तरीय सामर्थ्य वाला एक बीज उद्योग बनाया जाए। 'गैट' के बाद की स्थिति को देखते हुए यह जरूरी हो गया है कि विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा और बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण की दिशा में तैयारी की जाए।

बीज फसल की बुनियादी इकाई है जिसके माध्यम से दूसरे आदान पनपते हैं। यह उत्पादन प्रौद्योगिकी के अन्य घटकों को कारगर बनाने में उत्प्रेरक की भूमिका भी निभाता है। इस समय बीज क्षेत्र बौद्धिक संपदा अधिकारों जैसे 'गैट' के बाद भी उभरती प्रवृतियों से घिरा हुआ है।

देश में नई उन्नत प्रजातियों की उपलब्धता में वृद्धि से औपचारिक बीज उत्पादन और वितरण प्रणालियों के विकास को काफी बल मिला। सरकारी तथा निजी दोनों ही क्षेत्र आज बीज उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया से जुड़े हैं।

इस समय भारतीय बीज उद्योग में दो राष्ट्रीय संगठन, 13 राज्य बीज निगम, लगभग 147 निजी कंपनियां, 19 राज्य बीज प्रमाणन एजेंसियां, और 63 अधिसूचित बीज परीक्षण प्रयोगशालाएं शामिल हैं। कई निजी बीज कंपनियां बहुराष्ट्रीय कंपनियां हैं और उनकी अपनी अनुसंधान और विकास व्यवस्था है। सार्वजनिक क्षेत्र अधिकांश स्व-परागणित फसलें तैयार करता है, जिनमें 60 प्रतिशत गेहूं और चावल शामिल हैं, जबकि निजी क्षेत्र आमतौर पर संकर बीजों, सब्जियों और फलों के क्षेत्र में काम करता है, जो भारत में प्रमाणित बीजों के कुल उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत बैठता है। निजी कंपनियों द्वारा इन फसलों पर केंद्रित रहने का मूल कारण यह है कि ये कम मात्रा से अधिक मुनाफा देती हैं।

विश्व में बीज बाजार की कीमत 15 अरब अमरीकी डालर आंकी गई है। बीज बाजार में विभिन्न फसलों के संकर बीजों की बिक्री का हिस्सा लगभग 40 प्रतिशत बैठता है। पिछले वर्षों में किसानों के लिए प्रजनक और गुणवत्ता/प्रमाणित दोनों ही तरह के बीजों की उपलब्धता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। कुछ समय से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने प्रजनक बीज उत्पादन कार्यक्रम को बढ़ावा दिया है, जिसके लिए स्टेट फार्म का कार्पोरेशन आफ इंडिया, राज्य बीज निगमों और यहां तक कि कृषि विज्ञान केंद्रों और गैर-सरकारी संगठनों को इस काम में शामिल किया गया है, जिसके पास संयुक्त रूप से देश फार्म और संबंधित आधारभूत सुविधाओं का एक अच्छा-खासा हिस्सा है। हाल ही में विभिन्न फसलों के लिए पैदा किए गए प्रजनक बीज 29,000 क्विंटल सालाना के आंकड़े को पार गए हैं। हर साल लगभग 7,00,000 टन क्वालिटी बीज वितरित किया जाता है जिसमें से लगभग 5,60,000 टन प्रमाणित बीज होता है।

देश की बीज प्रतिस्थापन की 'वर्टीकल' दर में सुधार की गुंजाइश है। इस बात की भी जबर्दस्त आवश्यकता है कि क्वालिटी बीज के उत्पादन में भी वृद्धि की जाए ताकि

बीज प्रतिस्थापन दर बढ़कर एक संतोषजनक स्तर तक पहुंच सके।

पौध सामग्री की सुलभता और किसानों को इनके जारी किए जाने और उपयोग किए जाने के बीच की समयावधि को कम-से-कम करने की दिशा में असली मायनों में प्रगति नहीं हुई है। इसलिए यह स्वत: स्पष्ट है कि प्रक्रिया में लगे सभी स्तरों को बीजों की उपलब्धता को सुविधाजनक बनाना होगा क्योंकि बीज कृषि की बुनियादी जरूरत है और यह अन्य कृषि आदानों को उत्पादक तथा किफायती बनने में उत्प्रेरक की भूमिका भी अदा करता है।

सब्जियों के बीज

देश में सब्जियों के बीज के उद्योग की शुरुआत कलकत्ता की ब्रिटिश स्वामित्व वाली सटन एंड संस तथा पुणे की पेस्टन जी पी पोचा जैसी कुछ कंपनियों से हुई। एक ओर कंपनी ने बंगलौर में फूलों और सब्जियों की फसलों में संकर बीज प्रौद्योगिकी की शुरुआत की। उदारीकरण, विशेषकर नई बीज विकास नीति (1988) के तहत बहुराष्ट्रीय समेत कई अन्य कंपनियां भी मैदान में आईं।

सब्जियों के बीज कम मात्रा और उच्च मूल्य प्रकार के होते हैं। अनुमान लगाया गया है कि सब्जियों के बीजों की देश में कुल मात्रा लगभग 3 प्रतिशत है और इनका मूल्य कुल बीज बाजार का 20 प्रतिशत है। अनुमान है कि (1995) भारत की बीजों की सालाना जरूरत 35,000 टन होगी। फसलवार अनुमानों से पता चलता है कि संकर बीजों का हिस्सा काफी अधिक है।

बीज की किस्मों को केंद्रीय व राज्य दोनों ही स्तरों पर कृषि के लिए परीक्षण के बाद उपयोग और अंतत: अखिल भारतीय समन्वित फसल सुधार के तहत पहचान के लिए जारी किया जाता है। उपजातीय तथा प्रौद्योगिकी परीक्षण के लिए अखिल भारतीय समन्वित परीक्षण की भारतीय प्रणाली विश्व में अनूठी और अत्यंत जटिल प्रणालियों में से एक है और विश्व भर में इसकी सराहना एवं चर्चा हुई है।

नई बीज नीति

डा. एम.वी. राव की अध्यक्षता में बीज नीति समूह ने पौध प्रजनक अधिकारों के बारे में कई सिफारिशे कीं। इन सिफारिशों के आधार पर निम्नलिखित कदम उठाए गए :

—पौध किस्म संरक्षण के लिए एक अद्वितीय कानून बनाने का निर्णय लिया गया है। इसमें पौध प्रजनक अधिकारों के लिए एक ढांचा दिया गया है जिसे किसानों के अधिकारों तथा अन्य के द्वारा संतुलित किया गया है।

—प्रस्तावित पौध किस्म संरक्षण कानून यूपीओवी 1978 संधि के प्रावधानों के अनुरूप तैयार किया गया है।

—पौध किस्म संरक्षण संबंधी कानून को लागू करने के लिए एक योजना प्रस्तावित की गई है।

आमतौर पर सिफारिशें स्वीकार कर ली गई हैं।

'गैट' के बाद मुद्दे

वर्ष 1945 से 1994 तक अर्थात सात चक्रों में गैट ने ठोस वस्तुओं पर ही गौर किया तथा टैरिफ निर्धारण और टैरिफ संबंधी सभी अवरोधों में कमी तथा उत्तरोत्तर उनके विविधीकरण पर जोर दिया। वर्ष 1994 के उरुग्वे चक्र में जाकर इसके दायरे में ठोस इतर वस्तुओं को भी लाया गया जिसके लिए इन चार प्रमुख क्षेत्रों में पहल की गई:

1. सेवाओं और प्रौद्योगिकियों में व्यापार;
2. कृषि;
3. पर्यावरण;
4. बौद्धिक संपदा अधिकार।

व्यापार संबंधी पहलू (ट्रिप्स)

पौध किस्म संरक्षण

विश्व व्यापार संगठन समझौते का हस्ताक्षरकर्ता देश होने के नाते भारत 'ट्रिप्स' की धारा 27(3बी) के अंतर्गत पौध किस्मों के संरक्षण का कानून लागू करने के लिए वचनबद्ध है। इस धारा में कहा गया है कि "पक्ष या तो पेटेंटों के द्वारा या कारगर अद्वितीय प्रणाली से या फिर इनको मिलाकर पौध किस्मों के संरक्षण की व्यवस्था करेंगे।" भारत इस शर्त को पौध किस्मों के संरक्षण के लिए एक अद्वितीय प्रणाली के जरिए पूरा करने के लिए तैयार है।

अद्वितीय प्रणाली

प्रस्तावित कानून का मुख्य उद्देश्य कृषि विकास को

पर्याप्त बढ़ावा देना है जिसके लिए पौध किस्मों के संरक्षण की एक कारगर प्रणाली लाई जाएगी।

प्रस्तावित कानून पौध किस्म और किसान अधिकार संरक्षण अधिनियम के नाम से जाना जाएगा। किसी भी किस्म को संरक्षण के लिए तभी पंजीकृत किया जाएगा जब वह नवीनता, विशिष्टता, एकरूपता और स्थायित्व की कसौटी पर खरी उतरेगी। अपनी नई किस्म का संरक्षण प्राप्त करने के इच्छुक प्रत्येक प्रजनक को अपनी नई किस्म की पहचान के लिए उसका स्पष्ट, एकल व विशिष्ट नामकरण देना होगा। केवल केंद्र सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित ऐसी प्रजातियों/विशिष्टताओं की किस्मों को संरक्षण प्रदान किया जाएगा। सभी मामलों में पौध की नई किस्मों के संरक्षण की अवधि 15 वर्ष की होगी। वृक्ष और बेल इस नियम के अपवाद होंगे जिनके लिए संरक्षण की अवधि नई किस्म के पंजीकरण से 18 वर्ष की होगी। पौध-किस्मों के पंजीकरण में मदद के लिए एक किस्म और किसान अधिकार संरक्षण प्राधिकरण होगा।

इस प्रस्तावित कानून की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें किसानों और अनुसंधानकर्ताओं के अधिकारों को संरक्षण दिया गया है। दरअसल किसानों के अधिकार इस कानून का एक अभिन्न अंग होंगे। प्रस्तावित कानून में समानतापूर्ण लाभ बंटवारे और ग्राम समुदाय अधिकारों को भी शामिल किया गया है। कानून में कृषि जैव विविधता के संरक्षण और उसे बनाए रखने में किसानों और कृषि समुदायों की भूमिका को भी मान्यता दी गई है। प्रस्तावित कानून में पुरानी तथा पारंपरिक किस्मों के फार्म पर संरक्षण के वास्ते ग्राम समुदाय को हर्जाना देने के लिए एक राष्ट्रीय जीन कोष बनाने की भी बात की गई है।

किसानों के अधिकार खेत में बचे बीज, पारंपरिक किस्मों और ज्ञान तथा कई अन्य संबद्ध गतिविधियों के बारे में होंगे। एक अनिवार्य लाइसेंस प्रणाली का सुझाव दिया गया है जिससे कि किसी पौध किस्म को स्वामी अपने पास न रखे तथा जनहित में इसका बहुगुणन और वितरण सुनिश्चित हो सके। वर्तमान किस्मों और अनिवार्यता प्राप्त किस्मों को भी स्पष्ट किया गया है। एक अपीली बोर्ड, दंड व्यवस्था जैसे दीवानी उपायों तथा अन्य कानूनों के साथ समरूपता भी सुनिश्चित की गई है। ट्राईब्यूनल उल्लंघन संबंधी अपराधों और दंड व्यवस्था के प्रावधान भी किए गए हैं। ध्यान देने की बात है कि पौध किस्म संरक्षण के लिए जारी अधिकारों में एक बड़ा हिस्सा पुष्पों और सजावटी किस्मों के बारे में है। दूसरे नंबर पर सब्जियां, फलदार वृक्ष, खुम्भी आदि आते हैं। सजावटी किस्मों और वृक्षों में कई सीजन लग सकते हैं। सजावटी किस्मों के लिए प्रजनकों से चित्र भेजने की उम्मीद की जाती है। गुलाब जैसी सजावटी किस्मों के मामले में सभी संदर्भ किस्मों को उगाना असंभव है। अत: विशेषज्ञों के एक दल की भी जरूरत है जो विशिष्टता के बारे में फैसला कर सकें। 'विशिष्टता, एकरूपता और स्थायित्व' संबंधी मंजूरी के बारे में यह दल फैसला करेगा लेकिन संबद्ध प्रजाति की विशिष्टता के बारे में यदि कोई नया दावा किया जाता है तो इसे रद्द भी किया जा सकता है।

प्रस्तावित कानून की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें किसानों और अनुसंधानकर्ताओं के अधिकारों को संरक्षण दिया गया है। दरअसल किसानों के अधिकार इस कानून का एक अभिन्न अंग होंगे। प्रस्तावित कानून में समानतापूर्ण लाभ बंटवारे और ग्राम समुदाय अधिकारों को भी शामिल किया गया है। कानून में कृषि जैव विविधता के संरक्षण और उसे बनाए रखने में किसानों और कृषि समुदायों की भूमिका को भी मान्यता दी गई है।

संशोधित बीज अधिनियम 2000

बीज नीति समीक्षा समूह ने न केवल पौध संरक्षण और किसान अधिकार संरक्षण विधेयक में बल्कि बीज अधिनियम में भी बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण को शामिल करने की सिफारिश की है। इस समूह ने इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि देश में बेचे जाने वाले बीजों का एक बहुत बड़ा अनुपात बीज कानून के दायरे से बाहर है। इस अधिनियम में बागवानी और कृषि आएंगे। इसमें बीजों की बिक्री, आयात और निर्यात के विनिमय प्रस्तावित किए गए हैं। साथ ही इसमें देश भर में

किसानों को क्वालिटी बीजों की आपूर्ति में मदद देने वाले प्रावधान भी रखे गए हैं। एक राष्ट्रीय बीज बोर्ड की स्थापना का भी प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम के दो प्रमुख पहलू बीजों के पंजीकरण और छूट की धारा के बारे में है। छूट की इस धारा में किसानों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण से सुरक्षा प्रदान की गई है और उन्हें अपने बीज पैदा करने, इस्तेमाल करने और बेचने का अधिकार दिया गया है। बीज अधिनियम में दोषी पक्षों पर दंड को काफी बढ़ाने का भी प्रस्ताव किया गया है।

ट्रांसजैनिक बीज

बौद्धिक संपदा अधिकार, विशेष तौर से ट्रांसजैनिक या आनुवांशिक तौर पर रूपांतरित अवयवों की दृष्टि से एक जटिल मसला बन गया है। एक ट्रांसजैनिक में कई, कम से कम एकाधिक मालिकाना घटक/संरक्षण होते हैं। सभी के अधिकार खरीदना शायद संभव न हो। तब इसके लिए इन घटकों के स्वामियों के साथ समझौतों की जरूरत पड़ेगी।

जैव विविधता के मुकाबले आनुवांशिक तौर पर रूपांतरित अवयवों के बारे में चिंताएं व्यक्त की गई हैं। जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध भारत जैसे देश ने जैव विविधता को सुरक्षित करने के लिए विशेष उपाय किए हैं। साथ ही फसलों की उच्च उत्पादकता और गुणवत्ता के लिए आनुवांशिक तौर पर रूपांतरित अवयवों का भी सहारा लिया है।

हमारे देश में ऐसे छोटे किसानों की भारी संख्या है जो खेतों से बचाए गए बीजों का इस्तेमाल करते हैं। इसके लिए 'टर्मिनेटर जीन' जैसी प्रौद्योगिकियों को अपनाने में सतर्क रहने की जरूरत है। भारत सरकार ने देश में इस तकनीक को अनुमति न देने के लिए कदम उठाए हैं।

निष्कर्ष

अच्छी किस्म के तथा जरूरी मात्रा में वांछित किस्म के शुद्ध बीजों की आसानी से एवं समय पर उपलब्धता खेतिहर पैदावार बढ़ाने का सबसे आसान तरीका है जिसमें अधिक पैदावार देने वाली किस्मों का रकबा बढ़ाने, पौधों के खड़े रहने तथा फसलों के स्वस्थ रहने पर जोर देना होगा ताकि बंपर फसल पैदा हो सके। देश में कृषि की निरंतरता बनाए रखने की दिशा में हमारे प्रयासों में सफलता की एक महत्वपूर्ण कुंजी यह होगी कि देश में विश्व-स्तर का एक समर्थ बीज उद्योग खड़ा किया जाए। 'गैट' के बाद की स्थितियों को देखते हुए जरूरी हो गया है कि हम विशेष तौर पर विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा और बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण की दृष्टि से स्वयं को तैयार करें। पौध किस्म संरक्षण के साथ-साथ संशोधित बीज अधिनियम जल्दी ही आने वाला है। इसके प्रावधानों का बीज उद्योग पर काफी असर पड़ेगा। किस्म विकास और बीज उत्पादन में निवेश और उसके मुनाफे को सुनिश्चित रखने के साथ-साथ इन नियामक उपायों में किसानों के हितों की सुरक्षा के मजबूत प्रावधान हैं। अपनी प्राकृतिक और जन-संसाधन संबंधी विविधता के बूते पर निश्चित ही भारतीय बीज परिदृश्य नई ऊंचाइयों को छुएगा, जिससे भारतीय किसान के हितों को संरक्षित करने का बड़ा उद्देश्य तो पूरा होगा ही, देश में परिवारों को खाद्य और पोषण सुरक्षा भी उपलब्ध हो सकेगी। ❑

(श्री एस. प्रकाश तिवारी इंदौर के राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान केंद्र के निदेशक हैं।)

लेखकों से अनुरोध

कृपया अपने लेख टाइप करा कर दो प्रतियों में भेजें तथा टिकट लगा लिफाफा अवश्य संलग्न करें। लेख पर दो लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण-पत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व अवश्य प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। सभी रचनाएं 'संपादक, योजना' के नाम प्रेषित करें।

कृषि क्षेत्र की महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने के प्रयास

बी.एस. पद्मनाभन

कृषि क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को प्रभावी प्रशिक्षण देने तथा प्रसार सेवाओं के माध्यम से अधिकारसंपन्न बनाने की आवश्यकता जिन कारणों से उत्पन्न हुई, वे हैं— खेती योग्य जमीन की उपलब्धता में लगातार कमी, जनसंख्या का बढ़ता दबाव और बिगड़ता पर्यावरण। इन सबका खाद्य और पोषाहार सुरक्षा पर दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है।

अप्रैल में नई दिल्ली में आयोजित आयोजित राष्ट्रमंडल देशों के महिलाओं से संबंधित मामलों के प्रभारी मंत्रियों के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा था कि महिलाओं को केवल राजनीतिक दृष्टि से अधिकारसंपन्न बना देने से बात बनने वाली नहीं है। इसके साथ-साथ उन्हें आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भी सबल बनाना होगा। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने इस अवसर पर घोषणा की कि महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने के लिए राष्ट्रीय नीति को अंतिम रूप दिया जा रहा है और सन 2001 को 'महिला आधिकारिता वर्ष' के रूप में मनाया जाएगा।

जीवन के तमाम क्षेत्रों में महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने की आवश्यकता बड़े सही वक्त पर महसूस की गई है। वर्ष 1997 में मानव विकास सूचकांक के लिहाज से भारत 146 देशों की सूची में 118वें स्थान पर था। इसी प्रकार लिंग भेद से संबंधित सूचकांक की दृष्टि से भी भारत का स्थान 118वां था। इससे स्त्री-पुरुष असमानता के कारण मानव-विकास संबंधी अंतर में बढ़ोतरी का पता चलता है। महिलाओं को राजनीतिक दृष्टि से अधिकारसंपन्न बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल सात साल पहले 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के जरिए की गई जिनमें स्थानीय निकायों के एक-तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित करने का प्रावधान किया गया। इसी पहल के अगले चरण के रूप में संसद तथा विधानमंडलों में भी इसी तरह के आरक्षण की बात सोची जा रही है। जहां तक सामाजिक-आर्थिक अधिकारसंपन्नता का सवाल है, नौवीं योजना में इस दिशा में एक शुरुआत की गई है। इन क्षेत्रों के आबंटन में महिला विकास के लिए भी धन की व्यवस्था की गई है। इन उपायों के अच्छे नतीजा देखने के लिए अभी कुछ समय इंतजार करना होगा।

महिलाओं को स्त्री-पुरुष असमानता की बेड़ियों से मुक्त कराने, उनकी क्षमता विकास, उन्हें सूचना व ज्ञान उपलब्ध कराने तथा अपने भाग्य का खुद निर्धारण करने का विश्वास जगाकर नेता के रूप में उभरने का अवसर प्रदान करने के बारे में दो राय नहीं हो सकती। कृषि तथा संबंधित क्षेत्रों के लिए यह बात और भी प्रासंगिक है। देश की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान करीब एक-तिहाई है। कृषि में महिलाओं की भागीदारी तेजी से बढ़ रही है और खेती महिलाओं की गतिविधि बनती जा रही है। सरकारी अनुमान के अनुसार देश में खेतिहर मजदूरी और स्वरोजगार में लगे लोगों में लगभग

आधी संख्या महिलाओं की है। ग्रामीण क्षेत्रों की कुल महिला मजदूरों का 89.5 प्रतिशत खेती तथा इससे संबंधित औद्योगिक क्षेत्रों में लगा है।

'खेती में महिलाएं, पर्यावरण और ग्रामीण उत्पादन' से संबंधित खाद्य और कृषि संगठन के एक दस्तावेज के अनुसार विभिन्न कृषि उत्पादन प्रणालियों में उनकी भागीदारी का स्वरूप तथा व्यापकता अलग-अलग है। कृषि उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी कृषक परिवारों में सम्पत्ति के स्वामित्व के तरीके के अनुसार अलग-अलग है। उनकी भूमिका खेती का प्रबंध करने वाले प्रबंधक से लेकर खेतिहर मजदूर तक कुछ भी हो सकती है। कृषि उत्पादन में महिलाओं का औसत योगदान कुल मेहनत के 55 से 66 प्रतिशत तक होता है। उनकी भागीदारी कितनी अधिक है, इसका अनुमान हिमालय क्षेत्र में कराए गए एक अध्ययन से लगाया जा सकता है। इस इलाके में एक एकड़ खेत में बैलों की एक जोड़ी साल में 1,064 घंटे, एक पुरुष 1,212 घंटे और एक महिला 3,485 घंटे कार्य करती है।

फसल पैदा करने में मजदूरी के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष के काम में कोई स्पष्ट अंतर नहीं किया जाता। क्षेत्र और फसल के अनुसार महिलाओं का योगदान अलग-अलग रहता है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि बुआई से लेकर फसल कटाई और इसके बाद के कार्यों में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे बीज का चुनाव करती हैं, पौध लगाती हैं, निराई-गुड़ाई करती हैं और हरी खाद तथा गोबर की खाद तैयार करती हैं।

पशुपालन के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या 2 करोड़ होने का अनुमान लगाया गया है जबकि पुरुषों की संख्या 15 लाख ही है। इसी तरह दुग्ध उत्पादन में 7.5 करोड़ महिलाओं और 1.5 करोड़ पुरुषों के संलग्न होने का अनुमान लगाया गया है। पशुधन प्रबंध और दुग्ध उत्पादन में लगी महिलाएं कई तरह के कार्य करती हैं, जिनमें पशुओं की देखभाल, उन्हें चराना, चारा जुटाना, जानवरों के तबेलों की सफाई, गोबर से खाद बनाना और दूध तथा पशु-उत्पादों का प्रसंस्करण आदि शामिल हैं। वानिकी क्षेत्र में कराए गए अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार के वन उत्पादों के संग्रहण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। महिलाएं मुख्य रूप से इमारती लकड़ी को छोड़कर अन्य वन उपज का संग्रह करती हैं। देश के कई भागों में जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की रोजी-रोटी का मुख्य स्रोत ये पदार्थ ही हैं। औषधीय पौधे, तथा घरेलू सामान और खेती के उपकरणों की निर्माण सामग्री वनों से प्राप्त होती है। मछली पालन के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। उनकी सहभागिता के मुख्य क्षेत्रों में मछलियों को सुखाना, बेचना, जालों की मरम्मत और झींगा मछली का प्रसंस्करण शामिल हैं। जमीन के उपयोग तथा प्रबंध में भी महिलाओं की अहम भूमिका देखी गई है। इसके अलावा कृषि पर आधारित ग्रामीण उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी काफी महत्वपूर्ण है। एक अनुमान के अनुसार वनों पर आधारित लघु उद्योगों में महिलाओं की संख्या 51 प्रतिशत है। टस्सर रेशम कीट पालने और लाख का उत्पादन करने के साथ-साथ वे टोकरियां, झाड़ू और रस्सी बनाने का काम भी करती हैं।

दुनिया के अन्य भागों की तरह भारत में भी कृषि में महिलाओं की अधिकता से महिलाओं में गरीबी का प्रसार हुआ है। इससे इन ग्रामीण महिलाओं के परिवारों के पौष्टिकता-स्तर पर असर पड़ा है। एक अध्ययन के अनुसार गरीबी-रेखा से नीचे रहने वाले 35 प्रतिशत परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं।

हाल में एक नया रुझान देखा गया है। पुरुष मजदूर कृषि कार्य को छोड़कर अधिक मजदूरी वाले दूसरे रोजगार अपना रहे हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि ग्रामीण परिवारों में से एक-तिहाई की मुखिया महिलाएं हैं। इस तरह ग्रामीण भारत में एक नई प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है जिसे "कृषि में महिलाओं का प्रभुत्व" कहा जा सकता है। दुनिया के अन्य भागों की तरह भारत में भी कृषि में महिलाओं की अधिकता से महिलाओं में गरीबी का प्रसार हुआ है। इससे इन ग्रामीण महिलाओं के परिवारों के पौष्टिकता-स्तर पर असर पड़ा है। एक अध्ययन के अनुसार गरीबी-रेखा से नीचे रहने वाले 35 प्रतिशत परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं।

कृषि क्षेत्र में महिलाओं का प्रभुत्व दर्शाती ग्रामीण भारत की एक झलक।

प्रधानमंत्री ने सही कहा है कि महिलाओं में गरीबी बढ़ने की प्रक्रिया पर नीति निर्माताओं द्वारा गंभीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए और विकास योजनाओं के विभेदात्मक प्रभाव का अध्ययन किया जाना चाहिए।

कृषि और कृषि-आधारित ग्रामीण उत्पादन में महिलाओं के महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद ये महिलाएं उपेक्षित हैं। वे जो आमदनी पाती हैं, वह उनके द्वारा किए कार्य के समतुल्य नहीं होती। खेतिहर मजदूरों में भी महिलाओं का अनुपात लगातार बढ़ रहा है और शीघ्र इसके एक-तिहाई से बढ़कर 50 प्रतिशत पार कर जाने का अनुमान है। मगर महिला खेतिहर मजदूरों की स्थिति गंभीर तो है ही, दयनीय भी है। उन्हें पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी पर दिन-रात खेतों में काम करना पड़ता है। एक अध्ययन के अनुसार अर्जित आय में महिलाओं का हिस्सा सिर्फ 25.7 प्रतिशत होता है। उनकी मुख्य समस्याएं हैं: लम्बे समय तक कड़ी मेहनत; कम उत्पादकता; नई तकनीक तक पहुंच न होना; कम मजदूरी पर या पारिवारिक मजदूर की तरह काम करना; भूमि, ऋण, पानी, खरीद-फरोख्त और प्रबंधन जैसे संसाधनों तक पहुंच और नियंत्रण कम होना; स्त्री-पुरुष असमानता पर आधारित प्रसार सेवाएं; प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध न होना; बहुआयामी भूमिका निभाने के लिए सहायक सेवाओं की कमी; स्त्री-पुरुष भेदभाव पर आधारित मजदूरी दरें; स्वास्थ्य के लिए हानिकारक व्यावसायिक जोखिम।

इस पृष्ठभूमि में नई राष्ट्रीय कृषि नीति का स्वागत किया जाना चाहिए क्योंकि इससे ग्रामीण महिलाओं के दिन फिरने की उम्मीद बंधती है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने का लक्ष्य रखा गया है। कृषि के क्षेत्र में स्त्रियों के साथ भेदभाव के बारे में सरकार की चिंता को रेखांकित करने के लिए अलग से एक अनुच्छेद दिया गया है। नई नीति मे संसाधनों, तकनीकों तथा अन्य कृषि निवेशों तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाने के साथ-साथ उन्हें अधिकारसंपन्न बनाने तथा उनकी क्षमता के विकास के लिए उपयुक्त

संरचनात्मक, व्यावहारिक और संस्थागत उपाय करने का वायदा भी किया गया है। ऐसे में उम्मीद की जा सकती है कि इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक कारगर योजना बनाई जाएगी।

खाद्य और कृषि संगठन के दस्तावेज में अन्य बातों के अलावा यह भी कहा गया है कि स्थानीय पंचायतों के स्तर पर स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित आयोजना पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए; स्थानीय विकास के प्रयासों में मदद के लिए लिंगभेद से मुक्त सूचना उपलब्ध करानी चाहिए; कृषि के तमाम तकनीकी क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित सोच शामिल करने के लिए सभी कृषि शिक्षा संस्थाओं में नियमित पाठ्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए; भू-स्वामित्व संबंधी नीतियों की समीक्षा की जानी चाहिए; स्त्री-पुरुष समानता तथा महिलाओं के जमीन संबंधी अधिकार सुनिश्चित करने के लिए जमीन वितरण योजना पर अमल किया जाना चाहिए और किसानों की अधिकारों संबंधी पहल में महिला किसानों की चिंताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। कार्यक्रम के अंतर्गत जिन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना है, वे हैं: पंचायत प्रमुखों को स्थानीय नियोजन तथा महिला भागीदारी प्रणाली के बारे में प्रशिक्षण देना, कृषि संबंधित सामुदायिक विकास गतिविधियों के प्रबंधन के लिए ग्रामीण महिलाओं के नेतृत्व कौशल का विकास, विकास संबंधी निवेश के कारगर उपयोग के उद्देश्य से ग्रामीण महिलाओं के लिए आर्थिक तथा विकास साक्षरता पाठ्यक्रम; बागवानी, पुष्प उत्पादन और फसल कटाई के बाद की प्रसंस्करण गतिविधियों में लगी महिलाओं के प्रबंध वाले उत्पादन तथा विपणन उपक्रमों को सहायता; तकनीकी प्रशिक्षण और निवेश सहायता के माध्यम से उच्च लागत कृषि-व्यापार क्षेत्र का लाभ महिलाओं तक पहुंचाना।

प्रभावी प्रशिक्षण और प्रसार सेवाओं के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को कृषि क्षेत्र में अधिकारसंपन्न बनाने की आवश्यकता, खेती योग्य जमीन की उपलब्धता में लगातार कमी, जनसंख्या के बढ़ते दबाव और पर्यावरण में बढ़ती खराबी के कारण उत्पन्न हुई है। इनकी वजह से भविष्य में खाद्य तथा पौष्टिक आहार संबंधी सुरक्षा पर बुरा असर पड़ सकता है। कृषि के स्थायी विकास के लिए जहां एक ओर निवेश और नई तकनीक तक किसानों की पहुंच बढ़ानी होगी, वहीं दूसरी ओर किसानों के लिए प्रशिक्षण और प्रसार सेवाओं की व्यवस्था करनी होगी।

नीति निर्माता इस आवश्यकता के बारे में अधिकाधिक जागरुक हो रहे हैं और उन्होंने न सिर्फ सरकारी एजेंसियों के माध्यम से बल्कि समर्पित गैर-सरकारी संगठनों के जरिए नई-नई योजनाएं और कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं। डेनिश इंटरनेशनल डेवेलपमेंट असिस्टेंस (डेनमार्क की अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता एजेंसी)—डेनिडा चार राज्यों कर्नाटक, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में कृषक महिलाओं से संबंधित प्रसार कार्यक्रमों में 1980 के प्रारंभ से भारत सरकार की मदद कर रही है। डेनिडा परियोजना सरकारी एजेंसियों के माध्यम से लागू की जाती है। इस क्षेत्र में अनेक गैर-सरकारी संगठन भी कार्य कर रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कृषि में संलग्न महिलाओं के बारे में भुवनेश्वर में राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया है। यह केन्द्र ग्रामीण महिलाओं को उनके हुनर में सुधार करने तथा खाद्य सुरक्षा और पौष्टिक आहार सुरक्षा सुनिश्चित करने के राष्ट्रीय प्रयास में उन्हें कारगर तरीके से भागीदार बनाने के लिए तैयार करता है।

कृषि प्रसार के कार्य में लगे विशेषज्ञों के अनुसार महिलाएं बेहतर संप्रेषण कर सकती हैं। उनका यह भी विचार है कि एक महिला के दूसरी महिला के साथ मौखिक संप्रेषण से सूचनाओं का अधिक अच्छा प्रसार होगा। इसलिए प्रसार कार्य में मदद के लिए नेतृत्व गुणों से संपन्न ग्रामीण महिलाओं से संपर्क किया जाना चाहिए।

महिलाओं तक पहुंच में एक बड़ी बाधा यह है कि कई राज्यों में सांस्कृतिक प्रतिबंधों की वजह से पुरुष प्रसार कार्यकर्ता महिला किसानों से मिल नहीं पाते। इसके अलावा महिलाओं की घरेलू जिम्मेदारियां इस तरह की होती हैं कि वे घर से दूर किसी स्थान पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम या बैठक में भाग लेने में असुविधा

महसूस करती हैं। महिला प्रसार कार्यकर्ताओं की संख्या बहुत सीमित है। ऐसे में महिलाओं तक पहुंच के लिए कई तरीके अपनाए जा रहे हैं। इनमें इलेक्ट्रानिक मीडिया का उपयोग, क्षेत्रीय प्रदर्शन, मुद्रित सामग्री और अध्ययन यात्राएं आदि शामिल हैं। इनके माध्यम से महिला किसानों को अन्य कृषक महिलाओं की सफलताओं के उदाहरणों की जानकारी दी जा रही है। यह भी महसूस किया जा रहा है कि व्यक्तिगत संपर्क के साथ-साथ सामूहिक संपर्क के तरीके का भी उपयोग किया जाए। लेकिन इन सबके लिए कृषि प्रसार के तमाम तौर-तरीकों को नया रूप देना होगा।

कृषि प्रसार के कार्य में लगे विशेषज्ञों के अनुसार महिलाएं बेहतर संप्रेषण कर सकती हैं। उनका यह भी विचार है कि एक महिला के दूसरी महिला के साथ मौखिक संप्रेषण से सूचनाओं का अधिक अच्छा प्रसार होगा। इसलिए प्रसार कार्य में मदद के लिए नेतृत्व गुणों से संपन्न ग्रामीण महिलाओं से संपर्क किया जाना चाहिए। वे कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ-साथ संबंधित क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी उपलब्ध करा सकती हैं। पुरुष प्रसारकर्मियों के विपरीत महिला प्रसारकर्मी अपने कार्य के प्रति पूरे समर्पण से कार्य करती देखी गई हैं और अपने काम के लिए पूरी निष्ठावान होती हैं।

प्रशिक्षण और प्रसार गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने की कई सफल मिसालें भी सामने आई हैं। उदाहरण के लिए मीठे पानी के जीवों के उत्पादन के बारे में केन्द्रीय संस्थान ने अपनी प्रसार गतिविधियों के हिस्से के रूप में सिअल (उड़ीसा) में ग्रामीण तालाब की सफाई कर उसे गहरा किया। इस गांव की महिलाओं को तालाब में पालने के लिए मछली के जीरे और उन्हें पालने की तकनीक उपलब्ध कराई गई। इससे मछलियों की पैदावार बढ़ी और उनकी आमदनी में सुधार हुआ। बिहार के सारण जिले के कुमाना गांव में एक गैर-सरकारी संगठन, वालंटरी एक्शन फार रिसर्च, डेवेलपमेंट एंड नेटवर्किंग ने ग्रामीण महिलाओं के सशक्त स्व-सहायता समूह गठित किए हैं। इस गांव में एक महिला थी जो लड़कियों को दर्जी का काम सिखाती थी। लेकिन इसके लिए वह जो पैसा लेती थी उसे अदा करना हर एक के बस की बात नहीं थी। वह ज्यादा पैसा इसलिए लेती थी क्योंकि उसके पास एक बार में दो-तीन लड़कियों से ज्यादा को सिखाने की सुविधा नहीं थी। गांव में इस तरह के प्रशिक्षण की बड़ी आवश्यकता महसूस की जा रही थी इसलिए एन.जी.ओ. ने दर्जीगिरी प्रशिक्षण तथा उत्पादन केन्द्र की स्थापना की और उसी महिला को लड़कियों को सिखाने की जिम्मेदारी सौंप दी। इस केन्द्र में प्रशिक्षण के लिए ज्यादा सिलाई मशीने थीं और फीस भी कम ली जाती थी। नतीजा यह हुआ कि गांव की ज्यादा लड़कियां दर्जीगिरी का प्रशिक्षण लेने लगीं। यह परियोजना महिलाओं, खास-तौर पर छोटे और बहुत छोटे कृषक परिवारों की महिलाओं पर केन्द्रित है। कृषक महिलाओं के प्रशिक्षण और प्रसार की इस परियोजना (ट्रेनिंग एंड एक्सटेंशन फॉर वूमन इन एग्रिकल्चर) की सबसे महत्वपूर्ण कार्यकर्ता महिला ग्राम कृषि कार्यकर्ता होती है जो खेती करने वाली महिलाओं को प्रेरित तथा प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इससे एक सशक्त महिला मंडल और कुछ स्व-सहायता समूहों के गठन को बढ़ावा मिला। एक गांव के अंतर्गत आनेवाले समूहों के बीच आपसी संपर्क बढ़ने के साथ-साथ पांच गांवों की पंचायत के अंतर्गत आनेवाले समूहों में भी आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ। इस अनुकूल माहौल से प्रेरित होकर एन.जी.ओ. ग्रामीण महिलाओं को ग्रामीण विकास में अधिक उद्देश्यपूर्ण भूमिका निभाने के लिए संगठित कर रहे हैं। इसके लिए "सीखने के साथ-साथ कमाओ" की अवधारणा को बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही 'कर के सीखो' तथा 'कर के सिखाओ' जैसी प्रक्रियाएं अपनाई जा रही हैं।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक 'नाबार्ड' द्वारा एन.जी.ओ. के माध्यम से गांवों की 30 महिलाओं को वस्त्र-निर्माण, ग्राम शिल्प और खाद्य प्रसंस्करण में 45 दिन का प्रशिक्षण देने की परियोजना को मंजूरी दिए जाने से स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों को और बढ़ावा मिला है।

प्राकृतिक संसाधनों के स्थायी प्रबंध और गरीबी उन्मूलन में लगे पुणे के एक स्वैच्छिक अनुसंधान संगठन-बी.ए.आई.एफ. डेवेलपमेंट रिसर्च फाउन्डेशन ने उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के एक गांव में भूमिहीन महिला को कीड़ों के जरिए कम्पोस्ट खाद बनाने की जानकारी दी। आज उसने अपने परिवार के भरण-पोषण और बच्चों की

(शेष पृष्ठ 72 पर)

आज का नया मंत्र कृषि में विविधता

अरबिन्द घोष

परंपरा और आधुनिकता के बीच तालमेल कायम करके ही राष्ट्र के लिए भविष्य में लंबे समय तक खाद्य सुरक्षा और पौष्टिक आहार सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी। नई सहस्त्राब्दि के प्रारंभिक दशकों में यही हमारा मूलमंत्र भी होना चाहिए, ऐसी लेखक की मान्यता है।

कई साल पहले इस लेख का लेखक बैरकपुर स्थित केंद्रीय मत्स्य-पालन अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रेस के लिए आयोजित यात्रा के सिलसिले में पश्चिम बंगाल के सुंदरवन इलाके के दौरे पर गया था। यहां हमें दूर-दराज के गांवों में किसानों के घर देखने जाना था। हम लोगों ने नदी के किनारे (शायद यह गंगा थाले में बहने वाली कोई सहायक नदी धारा थी) अपनी कारें छोड़ दीं और नाव से नदी पार की। इसके बाद अपनी यात्रा का अगला चरण हमने रिक्शा से पार किया। यहां रिक्शा चलने के कारण इस इलाके को 'रिक्शा वन' के नाम से भी जाना जाता है। जब हम अपने गंतव्य पर पहुंचे तो हमें हरे नारियल का पानी पीने को मिला। इसके बाद हम एक किसान का फार्म देखने निकले। फार्म के एक छोर पर उसका घर था। करीब दो हेक्टेयर जमीन पर उसने भांति-भांति की जो फसलें उगा रखी थीं, उन्हें देखकर हम दंग रह गए। धान का खेत तो था ही, एक खेत में आलू भी बोए गए थे। एक खेत में भिंडी दिखाई दी तो दूसरे में पत्तेदार साग उगाया गया था। इसी के पास एक और खेत था जिसमें नींबू, मिर्च, अदरक आदि की खेती की गई थी। ऐसे में भला केला न हो, यह कैसे हो सकता था। केले के पेड़ों पर सब्जी के लिए हरे केले लटके हुए थे। यहीं पर पपीते के भी कुछ पेड़ थे। कुल मिलाकर इस फार्म पर सब कुछ उपलब्ध था और इसे देखकर 'जो चाहो वह पाओ' वाला किस्सा याद हो आया।

फार्म दो तरफ से एक तालाब से घिरा था जिसमें चमकदार रोहू (लैवियो रोहिता) और अन्य मछलियां तैरती हुई साफ नजर आ रही थीं। फार्म का मालिक झींगा मछली पालने की सोच रहा था और यही वजह थी कि मछली पालन संस्थान ने हमारे लिए यह यात्रा आयोजित की थी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत आने वाले बैरकपुर के मत्स्यपालन संस्थान ने मछली पालन, खासतौर पर रोहू जैसी मछलियों के पालन को बढ़ावा देने में अच्छी पहल की थी।

सुंदरवन बाकी इलाकों से अलग-थलग पड़ा क्षेत्र है। काकद्वीप तक रेल लाइन अभी हाल ही में पहुंच पाई है। जल्द ही इसके दक्षिण की ओर कुछ और आगे नामखना तक पहुंच जाने की उम्मीद है। यहां पैदा होने वाले अनाज और अन्य फसलों से यहां के लोगों को खाद्य सुरक्षा तो मिल जाती है मगर रोजमर्रा की जरूरत की कई अन्य चीजों की खरीद के लिए उन्हें करीब एक-सौ किलोमीटर उत्तर में स्थित कलकत्ता या सब डिविजनल कस्बा डायमंड हार्बर जाना पड़ता है। चक्रवात या बाढ़ के दौरान यहां के लोगों के लिए घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। नतीजा यह होता है कि इस इलाके के लाखों

लोगों को भोजन में सामान्य खुराक भी नहीं मिल पाती।

सौभाग्य से हम जिस किसान के घर गए उसके सामने ऐसी कोई समस्या नहीं थी क्योंकि खाने-पीने की लगभग सभी चीजें उसे अपने खेतों से मिल जाती थीं। मैं यहां इस प्रसंग को इसलिए बता रहा हूं क्योंकि भारत में खेती के आधुनिक तौर-तरीकों के तहत सिर्फ एक या दो फसल उगाने की परंपरा है। बारानी खेती वाले इलाकों में खरीफ के मौसम में सिर्फ धान उगाया जाता है और रबी के सूखे मौसम में कोई छुटपुट फसल ले ली जाती है। हरित क्रांति के असर वाले सिंचित क्षेत्रों में धान के बाद गेहूं उगाने की परंपरा लंबे समय से है लेकिन धान-गेहूं का यह चक्र कब तक चलेगा? अगर हम पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों की आज की खराब हालत पर विचार करें तो पता चलता है कि बड़े पैमाने पर धान और गेहूं उगाने का आकर्षण अब फीका पड़ चुका है। वर्ष 1999-2000 में रबी की भरपूर फसल से भारतीय खाद्य निगम के गोदाम गेहूं से लबालब भरे हुए हैं। नौबत यहां तक आ गई है कि सितंबर के तीसरे सप्ताह में मंडियों में जो धान आना शुरू हुआ है, उसके लिए गोदामों में जगह ही नहीं बची है। केंद्र सरकार को पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश के किसानों से धान खरीदने को एक तरह से मजबूर किया जा रहा है जबकि ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं है। रबी की फसल बोई जा चुकी है या फिर बोई जा रही है। ऐसे में अगर इस बार भी बम्पर फसल हुई तो अप्रैल-मई 2001 में भारतीय खाद्य निगम स्थिति से कैसे निपटेगा, यह भगवान ही जानता है।

सरकारी गोदामों में चार करोड़ टन अनाज जमा हो जाने से किसान और सरकार दोनों इस बात को लेकर परेशान हैं कि स्थिति से कैसे निपटा जाए। यह सच है कि इस समय देश के करीब 30 करोड़ लोग गरीबी-रेखा से नीचे गुजर-बसर कर रहे हैं। उन्हें फालतू अनाज सामान्य कीमत पर या फिर कुछ लोगों के सुझाव के अनुसार बिल्कुल मुफ्त दिया जा सकता है। खाद्य निगम के गोदामों में जमा अनाज के भंडार को कम करने के लिए यह तरीका कितना उचित होगा, इस बात को लेकर बहस जारी है।

मगर हरित क्रांति के असर वाले तीन क्षेत्रों के किसान इस सब के बावजूद गेहूं-चावल वाला फसल चक्र अब भी क्यों अपनाए हुए हैं? एक दृष्टिकोण के अनुसार अयुक्ति-संगत-सी लगने वाली इस प्रणाली में अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस समय गेहूं की फसल काटी जा रही होती है, मई का महीना आ चुका होता है। उत्तर-पश्चिम भारत में फसल कटाई का काम बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और कुछ अन्य इलाकों से आने वाले खेतिहर मजदूरों द्वारा किया जाता है। अगर उत्तर-पश्चिमी भारत में धान की फसल की बुआई जुलाई में अपने निर्धारित समय पर करनी है तो इन मजदूरों को मई में अपने घरों को लौट जाना चाहिए और करीब दो महीने बाद धान की पौध लगाने तथा उसके बाद रोपाई के लिए फिर यहां आना चाहिए। लेकिन आने-जाने का खर्च बचाने के लिए आजकल गेहूं की फसल कटने से पहले ही धान की पौध लगा दी जाती है। इसके बाद खेतों की जुताई कर नलकूपों से अंधाधुंध पानी निकाल कर रोपाई के लिए खेत तैयार कर लिए जाते हैं। इस तरह गेहूं की फसल कटाई से निपटकर मजदूर धान की रोपाई करने के बाद अपने घरों को लौटते हैं। अगेती किस्म का यह धान अगस्त-सितंबर में जब पक कर तैयार होता है तो ये लोग फिर उत्तर-पश्चिम इलाकों में धान कटाई के लिए पहुंच जाते हैं। इसके बाद अक्तूबर के शुरू होते-होते गेहूं की बुआई का काम प्रारंभ हो जाता है।

जाने-माने मृदा वैज्ञानिकों ने खेती के इस तरह के तौर-तरीकों के खिलाफ लोगों को आगाह किया है क्योंकि इससे जमीन को भारी नुकसान पहुंच रहा है। इसके अलावा जमीन के अंदर के पानी के अंधाधुंध इस्तेमाल से उत्तर-पश्चिम भारत में भूमिगत जलस्तर काफी नीचे चला गया है जबकि यहां नहरों से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। कम वर्षा वाले इस क्षेत्र के लिए यह खतरनाक स्थिति है। यही वक्त है जब वैज्ञानिकों को धान और गेहूं की खेती वाले फसल चक्र में बदलाव का सुझाव किसानों को देना चाहिए। कम-से-कम कुछ समय के लिए तो हमें इस फसल-चक्र में बदलाव लाना ही होगा।

यह दावा करना जल्दबाजी ही होगी कि भारत ने खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है और खाद्य-सुरक्षा भी सुनिश्चित कर ली है। हमारे देश के 20-30 करोड़ लोग अब भी भुखमरी का खतरा झेल रहे हैं। ऐसे में किसानों को चाहे थोड़े ही समय के लिए क्यों न हो,

मुख्य फसलों की बुआई बंद कर देनी चाहिए। इनकी जगह उन्हें सिंचाई सुविधा और पोषक तत्वों से युक्त जमीन में दलहनों तथा तिलहनों की खेती करनी चाहिए। भारत को हर साल करोड़ों रुपये दलहनों और खाद्य तेलों के आयात पर खर्च करने पड़ते हैं। अगले वर्ष (अप्रैल 2001) से कृषि उत्पादों के आयात पर सभी तरह के मात्रात्मक प्रतिबंध समाप्त हो जाएंगे। कृषि के क्षेत्र में आने वाले संकट को टालने का एक उपाय तो यही है कि उपजाऊ जमीन में दलहनों और तिलहनों की खेती की जाए। कम उपजाऊ जमीन में इन फसलों को उगाने का जो चलन है, उसे बंद किया जाना चाहिए। अगर हम कुछ वर्षों के लिए धान-गेहूं के फसल चक्र को तोड़कर इन अनाजों को उगाना कुछ कम कर दें और इनके स्थान पर दलहनी व तिलहनी फसलें उगाएं तो भारत में विदेशों से बड़े पैमाने पर दलहनों और पामोलीन तेल की डंपिंग रोकी जा सकेगी। उम्मीद है इस बदलाव से न केवल जमीन की उर्वराशक्ति बढ़ेगी, बल्कि देश दलहनों और तिलहनों के मामले में आत्मनिर्भर भी बन सकेगा।

इसी संदर्भ में सरकार द्वारा जुलाई 2000 में घोषित राष्ट्रीय कृषि नीति से एक उद्धरण देना प्रासंगिक होगा। इसमें कहा गया है कि : "कृषि के बारे में विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार आयात संबंधी मात्रात्मक प्रतिबंध हटाए जाने के बाद किसानों को दुनिया के बाजारों में कीमतों में अनावश्यक उतार-चढ़ाव के बुरे असर से बचाने तथा निर्यात बढ़ाने के लिए विभिन्न खाद्य पदार्थों के लिए अलग-अलग नीतियां तथा व्यवस्थाएं बनानी होंगी। मूल्यस्पर्धा के साथ-साथ विपणन संबंधी अन्य पहलुओं जैसे गुणवत्ता, विकल्प, स्वास्थ्य और जैव-सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाएगा। बागानी फसलों और समुद्री उत्पादों के निर्यात पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।"

बागवानी के क्षेत्र में हाल के वर्षों में जो विविधता आई है, वह निश्चय ही अभूतपूर्व है। उदाहरण के लिए सेब को लीजिए। सिर्फ 40 वर्ष पहले यह अमीरों का फल माना जाता था। सिर्फ कश्मीर में यह इतनी मात्रा में होता था कि जरूरत से ज्यादा को अन्य स्थानों को भेज दिया जाता था। मगर हिमाचल प्रदेश में सेब के उत्पादन में जो क्रांति हुई उससे यह न सिर्फ भारत के प्रत्येक शहर और गांव में मिलने लगा है, बल्कि पड़ोसी बंगलादेश में भी वाजिब दामों पर उपलब्ध है।

अगर हम कुछ वर्षों के लिए धान-गेहूं के फसल चक्र को तोड़कर इन अनाजों को उगाना कुछ कम कर दें और इनके स्थान पर दलहनी व तिलहनी फसलें उगाएं तो भारत में विदेशों से बड़े पैमाने पर दलहनों और पामोलीन तेल की डंपिंग रोकी जा सकेगी। उम्मीद है इस बदलाव से न केवल जमीन की उर्वराशक्ति बढ़ेगी, बल्कि देश दलहनों और तिलहनों के मामले में आत्मनिर्भर भी बन सकेगा।

एक और उदाहरण अंगूर का है। देश के विभाजन के बाद इसे विलासिता की वस्तु समझा जाने लगा था, क्योंकि बलूचिस्तान में चमन से इसका आना बंद हो गया। कश्मीर घाटी में थोड़ा-बहुत अंगूर होता था। आज दक्षिण में महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और उत्तर में पंजाब व हरियाणा में अच्छे किस्म का अंगूर पैदा किया जाने लगा है। महाराष्ट्र में अंगूर उत्पादकों का सहकारी संगठन महाग्रेप अब उत्कृष्ट क्वालिटी के अंगूर लंदन के फल बाजार को भेज रहा है और वहां के व्यापारियों ने चिली की बजाय उनसे अंगूर खरीदना शुरू कर दिया है।

भारत में जलवायु की जो व्यापक विविधता पाई जाती है उसकी वजह से किसी भी तरह की बागानी फसल यहां आसानी से उगाई जा सकती है। वर्ष 1989-99 में भारत में 4.40 करोड़ टन फल पैदा किए गए और बागानी फसलों के उत्पादन में वह चीन के बाद दूसरे स्थान पर आ गया। ऐसे में अगर अनेक राज्यों में कुछ जमीन पर गेहूं और धान की बजाय बागवानी की जाए तो यह अच्छी बात होगी, खासतौर पर निर्यात के लिए बागवानी तो बड़ी फायदेमंद होगी।

भारत सब्जियों के उत्पादन में भी दुनिया में दूसरे नंबर पर है। वर्ष 1998-99 में यहां 8.75 करोड़ टन सब्जियां पैदा की गईं। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आलू और प्याज को छोड़कर अन्य लगभग सभी सब्जियां कम उपजाऊ या खराब

जमीन में उगाई जाती हैं। इस तरह की जमीन को निर्यात के लिए बेहतरीन किस्म की सब्जियों के उत्पादन के वास्ते विकसित किया जाना चाहिए। ये सब्जियां पश्चिम एशिया के धनी देशों को बड़े पैमाने पर निर्यात की जा सकती हैं।

अगर फिर से अनाज की बात करें तो यह बात ध्यान देने की है कि 1999-2000 में करीब 2.06 करोड़ टन अनाज पैदा हुआ है इसमें से 1.75 करोड़ टन चावल और गेहूं था। अगर किसी महामारी से ये दो मुख्य फसलें नष्ट हो जाएं तो हमारा गुजारा कैसे चलेगा।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने हाल में तथाकथित मोटे अनाज (जैसे कोदो, कुल्थी, ज्वार-बाजरा आदि) की किस्मों के विकास की नई योजना शुरू की है। ये अनाज परंपरागत रूप से न सिर्फ जनजातीय लोगों के सामान्य भोजन में इस्तेमाल किए जाते रहे हैं, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब लोग भी इन्हें खाते हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से ये अनाज गेहूं और चावल से जरा भी कम नहीं हैं। इनकी एक खूबी यह है कि चावल और गेहूं जैसे अभिजात्य लोगों के अनाज के मुकाबले ये काफी सस्ते होते हैं। ज्वार-बाजरा जैसे मोटे अनाज चावल और गेहूं जैसी फसलों के किसी कारण खराब होने की स्थिति में लोगों की आहार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अन्नपूर्णा योजना

इसी संदर्भ में 1950 के दशक के प्रारंभ में स्वर्गीय कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी और उनकी पत्नी स्वर्गीय

भारत में विभिन्न खाद्य पदार्थों की मांग (हजार टन में)

खाद्य पदार्थ	वर्ष 2000		वर्ष 2015		वर्ष 2030	
	निम्न आय वृद्धि	उच्च आय वृद्धि	निम्न आय वृद्धि	उच्च आय वृद्धि	निम्न आय वृद्धि	उच्च आय वृद्धि
चावल	84417	84255	101886	101441	114499	113893
गेहूं	63375	62545	74607	72411	83045	80087
मक्का	10466	10281	12196	11714	13522	12876
अन्य मोटे अनाज	21803	21419	25407	24403	28171	26825
कुल अनाज	180061	178500	214096	209969	239238	233681
दलहन	16599	17028	21303	22578	24515	26312
खाद्यान्न	196659	195528	235399	232547	263752	259993
आलू	19905	20716	26394	28911	30760	34370
खाद्य तेल	8151	8324	10355	10863	11870	12581
सब्जियां	83388	91165	123824	151861	150823	193562
फल	47688	51774	69678	84099	84336	106126
दूध	76932	82451	109092	127805	130502	158325
मांस	5335	5918	8196	10396	101181	13534
अंडा	1880	2086	2889	3664	3566	4770
मछली	5507	6108	8460	10731	10444	13971

निम्न आय वृद्धि (3.5 प्रतिशत प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद); उच्च आय वृद्धि (5.5 प्रतिशत प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद)

लीलावती मुंशी के प्रयासों की याद हो आती है। उन्होंने देशभर में ऐसे अनेक रेस्तरां खोले जिनमें सिर्फ अनाज रहित भोजन परोसा जाता था। ऐसा ही एक रेस्तरां दिल्ली में जनपथ की दुकानों के पिछवाड़े में भी खोला गया था। यह प्रयोग कई यात्री रेलगाड़ियों में भी अपनाया गया। अनेक जनता एक्सप्रेस ट्रेनों के भोजन यानों में इस रेस्तरां के नाम वाला अन्नपूर्णा आहार उपलब्ध रहता था। शायद अनाज आयात के उस जमाने में चावल और गेहूं की भारी कमी की वजह से मुंशीजी को 'अन्नपूर्णा' योजना शुरू करने की प्रेरणा मिली होगी। बाद में 1950 के दशक के अंत में अनाज उत्पादन की स्थिति में सुधार के बाद अन्नपूर्णा रेस्तरां भी बंद हो गए। तत्कालीन खाद्य और आपूर्ति मंत्री श्री रफी अहमद किदवई ने देश में राशनिंग प्रणाली समाप्त कर दी थी। लेकिन गुजरे जमाने की अन्नपूर्णा योजना को फिर से शुरू करने का समय आ गया है।

संलग्न सारणी से पता चलता है कि भविष्य में अनाज, खासतौर पर चावल और गेहूं की मांग उतनी तेजी से नहीं बढ़ेगी जिस तेजी से फल-सब्जी, मछली, मांस और अंडे की बढ़ेगी। सारणी से यह भी पता चलता है कि जहां सन 2030 तक गेहूं और चावल की मांग 30 प्रतिशत से अधिक और सभी खाद्यान्नों की 50 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़नी है, वहीं आलू की मांग में करीब 50 प्रतिशत और सब्जियों की मांग में 120 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी होने का अनुमान है। इसी अवधि में फलों की मांग में लगभग 100 प्रतिशत, दूध की मांग में 100 प्रतिशत, मांस की मांग में 100 प्रतिशत से अधिक, अंडे की मांग में करीब 150 प्रतिशत और मछली की मांग में 100 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि होने का भी अनुमान लगाया गया है।

नई सहस्राब्दि में भारत में लोगों की रोज की खुराक में पौष्टिक तत्वों से भरपूर फलों और सब्जियों का महत्व बढ़ेगा। इसी उद्देश्य से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने बागवानी संबंधी अनुसंधान के लिए नौवीं योजना में 2 अरब 30 करोड़ रुपये आबंटित किए हैं। यह राशि आठवीं योजना में आबंटित 1.04 अरब रुपये के मुकाबले दुगुने से भी अधिक है। परिषद के बागवानी प्रभाग के अंतर्गत सात प्रमुख अनुसंधान और विकास कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो फल वाली फसलों, सब्जियों, कंद-मूल वाली फसलों, बागानी फसलों, मसालों, पुष्प उत्पादन, औषधीय पौधों के उत्पादन तथा बागवानी वाली फसलों के तैयार होने के बाद उनके प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और प्रबंधन से संबंधित हैं।

असल में बागवानी क्षेत्र के लिए नौवीं योजना में 13 अरब रुपये आबंटित किए गए हैं। (इसमें अनुसंधान कार्यक्रमों के लिए आबंटित राशि शामिल नहीं है)। इनमें से एक कार्यक्रम जनजातीय व पहाड़ी इलाकों में बागवानी के विकास तथा शीतगृहों के आधुनिकीकरण से संबंधित है।

आज के वरिष्ठ नागरिकों ने, जो हरित क्रांति से पहले के दिनों में नौजवान रहे होंगे, कई अकाल झेले हैं। जिन इलाकों में ज्वार-बाजरा नहीं खाया जाता उन क्षेत्रों के लोगों को अकाल के समय अर्जेंटीना तथा अन्य देशों से आयातित मोटे अनाज की रोटियां खाने को मजबूर होना पड़ा। वर्ष 1950 के दशक के अंत तथा 1960 के प्रारंभ में जब हरित क्रांति हुई तो चावल और गेहूं पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होने लगे और लोगों ने राहत की सांस ली। बड़ी जल्दी ज्वार-बाजरा तथा कई अन्य मोटे अनाज एक बार फिर वापस आ रहे हैं लेकिन इस बार इनकी वापसी अकाल की वजह से नहीं बल्कि बिल्कुल अलग कारण से हो रही है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस लेख के शुरू में सुंदरवन के जिन किसानों का हमने जिक्र किया था, उन्होंने कई अन्य बुद्धिमान किसानों की तरह भविष्य की स्थिति का सही आकलन कर लिया था। असल में इन किसानों को खेती में विविधता को अपनाने की जानकारी अपने पूर्वजों से विरासत में मिली। परंपरागत ज्ञान आज भी हमें ऊतक संवर्धन, जैव-उर्वरक और जैव-कीटनाशक जैसी वैज्ञानिक प्रगति का खेती में पूरा फायदा उठाने के साथ-साथ पुरानी प्रणाली को अपनाने की प्रेरणा दे रहा है। परंपरा और आधुनिकता के बीच तालमेल कायम करने से आने वाले समय में राष्ट्र के लिए लंबे समय तक खाद्य-सुरक्षा और पौष्टिकता-सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी। नई सहस्राब्दि के प्रारंभिक दशकों में यही हमारा मूलमंत्र भी होना चाहिए। ❑

(श्री अरबिंद घोष दिल्ली के वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

वर्षा-सिंचित कृषि अनुसंधान और विकास परिप्रेक्ष्य

पी.सी. भाटिया
एच.पी. सिंह

वर्षा-सिंचित कृषि अनुसंधान के लिए केंद्रीय संसाधन के रूप में पानी आवश्यक है। भविष्य में अनुसंधान सुस्पष्ट जलसंभर इकाइयों को आधार बनाकर किए जाएंगे। इसके लिए सामाजिक-आर्थिक और जैव-भौतिकी जैसी विभिन्न शाखाओं के बीच तालमेल बैठाना होगा।

पिछले तीन दशकों में भारत ने खाद्य उत्पादन में जबर्दस्त प्रगति की है। परिणामस्वरूप खाद्यान्न के मामले में देश न केवल आत्मनिर्भर हुआ है, अपितु जरूरत से ज्यादा अनाज का उत्पादन हुआ है। लेकिन अगले 25 वर्षों में बढ़ती जनसंख्या का पेट भरना एक टेढ़ी खीर होगी। देश को वर्ष 2020 तक 1.3 अरब लोगों को भोजन उपलब्ध कराना होगा जिसके लिए हर वर्ष अतिरिक्त खाद्यान्न की जरूरत पड़ेगी। हाल की राष्ट्रीय कृषि नीति के अनुसार अनाज उत्पादन में 4 प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल करनी होगी।

देश में वर्षा-सिंचित इलाका 940 हेक्टेयर से अधिक है जो शुद्ध कृषि क्षेत्र का लगभग 65 प्रतिशत बैठता है। इससे कुल खाद्यान्न उत्पादन का 40 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त होता है और कुल जनसंख्या के 40 प्रतिशत का पेट भरता है। जब देश की पूर्ण सिंचाई क्षमता का इस्तेमाल होने लगेगा, तब भी कुल बुवाई क्षेत्र का 50 प्रतिशत हिस्सा वर्षा-सिंचित रहेगा। इस समय मोटे अनाज का 95 प्रतिशत, दलहन का 91 प्रतिशत, तिलहन का 80 प्रतिशत, कपास का 65 प्रतिशत और धान का 53 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा-सिंचित है। देश का दो-तिहाई पशुधन इन इलाकों में रहता है जिनमें जुगाली करने वाले पशुओं, भेड़ों व बकरियों की बहुतायत है। शुष्क इलाके को छोड़कर देश के वर्षा-सिंचित क्षेत्र, अर्थात अर्द्ध-शुष्क और उप-आर्द्र क्षेत्र मृदा सर्वेक्षण एवं भू-उपयोग नियोजन के राष्ट्रीय ब्यूरो के 13 कृषि पारिस्थितिक क्षेत्रों और 27 उपक्षेत्रों में फैले हुए हैं। ये तथ्य देश में वर्षा- सिंचित कृषि के महत्व को उजागर करते हैं।

अगर खाद्यान्न चारे और रेशे की बढ़ती मांग को स्थायी तौर पर पूरा करना है तो वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने के अलावा कोई चारा नहीं है।

उत्पादन में स्थायित्व लाने के लिए वर्षा-सिंचित कृषि में मृदा व जल बुनियादी संसाधन होते हैं। भौगोलिक दृष्टि से लगभग 402.6 लाख हेक्टेयर इलाका 251.6 लाख हेक्टेयर मीटर सालाना वर्षा जल उपलब्धता वाले 500-750 किमी वर्षा के क्षेत्र में पड़ता है, जबकि 658.6 लाख हेक्टेयर इलाका 576.3 लाख हेक्टेयर मीटर की वर्षा जल उपलब्धता वाले क्षेत्र में आता है। इस अच्छी-खासी वर्षा के बावजूद वर्षासिंचित प्रदेशों में सूखा और फसल नष्ट होने की घटनाएं अक्सर होती रहती हैं जिसका मुख्य कारण रास्ता बदल लेने वाला मानसून और भू-अवक्रमण के लिए जिम्मेदार अपर्याप्त मृदा एवं वर्षा जल प्रबंध होता है। नतीजा यह हुआ है कि

वर्षा-सिंचित कृषि की समस्याएं एक तरफ तो फसल के लिए पानी की कमी और दूसरी तरफ निरंतर भूमि अवक्रमण के कारण बढ़ती ही जा रही हैं। भारत की 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर यानी 74 प्रतिशत वर्षा-जल प्राप्ति दक्षिण-पश्चिम मानसून और उत्तर-पूर्व मानसून से होती है। ब्यौरा तालिका-1 में दिया गया है।

तालिका-1

मानसून और मानसून-पूर्व अवधि में भारत में वर्षा जल उपलब्धता

मानसून	लाख हेक्टेयर मीटर	प्रतिशत
दक्षिण-पश्चिम	2960	74
उत्तर-पूर्व	120	3
मानसून पूर्व	520	13
मानसून पश्चात	400	10
कुल	4000	100

अनुसंधान सफलताएं

देश भर में फैली 22 अखिल भारतीय शुष्क कृषि समन्वित अनुसंधान परियोजनाओं, 8 परिचालनात्मक अनुसंधान परियोजनाओं और 25 अखिल भारतीय कृषि मौसम विज्ञान अनुसंधान परियोजनाओं वाला केंद्रीय शुष्क भूमि कृषि अनुसंधान संस्थान देश में वर्षा-सिंचित क्षेत्रों के लिए स्थान विशिष्ट प्रौद्योगिकियां विकसित करता है। नौवीं पंचवर्षीय योजना के लिए इसका बजट 30 करोड़ रुपये का है। इन प्रौद्योगिकियों में विभिन्न कृषि पारिस्थितिक क्षेत्रों के लिए ऐतिहासिक मौसम आंकड़ों का विश्लेषण और प्राप्त मौसम मापदंडों के एक बड़े डाटाबेस का विकास, वर्षा-सिंचित क्षेत्रों के सूखा संभावित इलाकों का सीमांकन, प्रभावी उपजाऊ सीजन की अवधि की पहचान, अंतर फसल/दोहरी फसल के लिए उचित संभावित क्षेत्र, आपातिक फसल योजनाएं और प्रबंध रणनीतियों जैसी संसाधन विशेषताएं, आद्रता उपलब्धता के लिए निम्नतम मूल्यों की स्थापना, मौसम और कीट संबंधों तथा सरल फसल मौसम माडलों का विकास और फसल वृद्धि के गतिशील समरूपण माडलों को मंजूरी शामिल है।

मृदा व जल संरक्षण की उन्नत और व्यवस्थित कुशल प्रौद्योगिकियों में शामिल हैं सीढ़ीदार (इंटर टैरेस) भू-उपचार, कंटूर श्रेणीबद्ध और खेत के पुश्तों के माध्यम से वर्षा जल का कुशल संरक्षण,, यथास्थान जल संग्रहण, विभिन्न उत्पाद प्रणालियों (तालिका-2) के लिए भू-अवक्रमण रोकने वाली वेटिवर, नींबू घास, ग्लिरिसिडिया और सेंक्रस जैसी सही वनस्पति बाड़ों की पहचान। विकसित की गई कुछेक प्रौद्योगिकियां इस प्रकार हैं : फसलों, भुंडेर, नाली (रिज-फरो) प्रणाली और यथास्थान जलसंग्रहण के लिए सूक्ष्म भू-आकृति (रिलीफ) प्रणाली, नमी बनाए रखने तथा खरपतवार नियंत्रण के लिए सीजन के बाद और गहरी जुताई; मध्यम वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसल के लिए चौड़ी क्यारियों की प्रणाली तथा कम वर्षा वाले बाई-माडल क्षेत्रों में रबी की फसल के लिए विभक्त पुश्ताबंदी और 'टाइड रिजिंग'; खेतों में छोटे जोहड़ों के जरिए जल संग्रहण तथा भूजल भराव, खरीफ फसलों की पैदावार बढ़ाने और रबी फसलों की 'कम-अप' सिंचाई के लिए संग्रहित जल का उपयोग।

एक प्रणाली विशेष में मृदा व वर्षा-जल संरक्षण उपायों से मेल खाती कुशल फसल प्रणालियां विकसित की गईं। विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों के लिए विकसित इन प्रणालियों में सर्वाधिक कुशल फसलें, किस्में और फसली प्रणालियां शामिल की गईं। समन्वित पोषक तत्व प्रबंध रणनीतियों के जरिए बीज पकने की इष्टतम अवधि, पौध घनत्व और पोषक तत्वों जैसी कृषि तकनीकें (तालिका-2) तैयार की गईं। चरागाह, वन चरागाह, शुष्क भूमि बागवानी, कृषि वनवर्द्धन, कृषि बागवानी जैसी वैकल्पिक भू-उपयोग प्रणालियों से संबंधित प्रौद्योगिकियां विकसित की गईं तथा भिन्न-भिन्न वर्षा-सिंचित उत्पादन प्रणालियों के लिए उनका अर्थशास्त्र निकाला गया।

वर्षा-सिंचित इलाकों में सफलतापूर्वक फसल लगाने के लिए सही जुताई और बीजों व उर्वरकों का ठीक-ठाक स्थापन अत्यंत आवश्यक होता है। इस महत्वपूर्ण जरूरत को पूरा करने के लिए उपयुक्त यंत्र विकसित किए गए और खेतों की स्थितियों में उनका परीक्षण किया गया। वर्षासिंचित अल्फीसोल क्षेत्रों में इस्तेमाल के लिए कृषि तकनीकों का विकास तथा कढ़ी पत्ता, मेंहदी और जेटाफ्रा

जैसी उच्च-मूल्य फसलों के जर्मप्लाज्म का मूल्यांकन भी किया गया।

तालिका-2

सोरधम पर जैविक और अजैविक पोषक तत्वों का समन्वित उपयोग

स्रोत/स्तर	अनाज की पैदावार* क्विंटल प्रति हेक्टेयर	
	40 कि.ग्रा. एन.एच.ए.-1	60 कि.ग्रा. एन.एच.ए.-1
यूरिया	15.1	20.2
सोरधम स्टोवर	5.2	5.9
ल्यूकेइना (पत्ते-टहनियां)	11.0	12.7
ग्लिरिसिडिया/मूंगफली छिलका	10.4	13.4
यूरिया-सोरधम स्टोवर (1:1)	12.4	16.2
यूरिया-ल्यूकेइना (1.1)	14.3	19.5
यूरिया-ग्लिरिसिडिया/ मूंगफली छिलका (1.1)	16.4	18.4

*3 साल की औसत।

प्रभाव एवं आकलन

ए.आई.सी.आर.पी.डी.ए. के परिचालनात्मक अनुसंधान कार्यक्रमों के माध्यम से पहले के अनुसंधान प्रयासों से पोषक तत्व संबंधी दबावों को दूर करने और खरपतवार नियंत्रण करने और पोषक तत्वों के अनुत्पादक उपयोग से बचने के लिए मिट्टी में मौजूद नमी के उद्देश्य से सरल कृषि तकनीकों, वर्षा जल प्रबंध, फसलों की उन्नत जैव श्रेणियों, मृदा उर्वरता प्रबंध के मिले-जुले इस्तेमाल से क्षमता उत्पादन रणनीतियां पहचानने में मदद मिली है। परिणामस्वरूप पिछले तीन दशकों में बेहतर वर्षासिंचित प्रौद्योगिकियां अपनाने से कई फसलों की पैदावार 100-200 प्रतिशत तक बढ़ी है। अधिक महत्व की बात तो यह है कि साल-दर-साल और साल के दौरान वर्षा की मात्रा में घट-बढ़ के बावजूद फसल खराब होने की घटनाएं काफी हद तक कम की जा सकी हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों ने सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान देश में 30 माडल जलसंभरों के लिए तकनीकी समर्थन उपलब्ध कराया जिससे आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय वर्षासिंचित कृषि जलसंभर विकास कार्यक्रम के तहत वर्षासिंचित क्षेत्रों में जलसंभर विकास की दिशा में एक बड़ी पहल करने में मदद मिली।

जलसंभर कार्यक्रम के तहत जल संरक्षण और भंडारण ढांचों के निर्माण से रोक बांधों, जल संग्रहण तालाबों में अतिरिक्त सतही भंडारण की दृष्टि से अधिक जल उपलब्ध हुआ तथा भूजल का अधिक पुनर्भरण हो सका। कई जलसंभर स्थितियों में खुदे कुओं की संख्या में और भूजल-स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 14 जलसंभरों में खुले कुओं और बंधियों में अधिक जल उपलब्ध होने से पांच वर्ष की अवधि में फसलों के घनत्व में 50 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हुई। इस प्रकार अतिरिक्त जमीन पर खेती करना संभव हुआ। संरक्षण उपायों से वर्षा जल के उपयोग की कुशलता में भी वृद्धि हुई। सुनिश्चित जलापूर्ति द्वारा कुछ स्थानों पर कम उपज देने वाली पारंपरिक फसलों के स्थान पर उच्च मूल्य वाली फसलें लगाना संभव हो सका।

उत्पादकता और फसली गहनता में वृद्धि के साथ ही आदानों के इस्तेमाल और निवेश में भी वृद्धि हुई। नतीजा यह हुआ कि जलसंभर रहित गांवों की तुलना में जलसंभर वाले गांवों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई। कुछेक जलसंभरों में जल संसाधनों के उत्पन्न होने और फसलों की उत्पादकता में स्पष्ट प्रभाव देखा गया जिसके लिए उन्हें राष्ट्रीय उत्पादकता पुरस्कार मिले।

नई प्रौद्योगिकियां

पिछले कुछ दशकों के दौरान शुष्क भूमि कृषि ढांचे में किए गए अनुसंधान के आधार पर कई प्रौद्योगिकियां उभर कर सामने आईं और किसानों से इन प्रौद्योगिकियों की सिफारिशें की गईं। कुल क्षेत्र में आई कमी के बावजूद मोटे अनाज की पैदावार 65 प्रतिशत तक बढ़ी। कुल क्षेत्र तथा सिंचित क्षेत्र दोनों में वृद्धि के कारण तिलहनों की पैदावार में 57 प्रतिशत तक वृद्धि हुई जबकि दलहनों की पैदावार उतनी ही बनी रही। इन परिवर्तनों से पता चलता है कि दलहनों की अपेक्षा पोषक अनाज के लिए प्रौद्योगिकी में

सुधार अधिक लाभकारी (10-15 प्रतिशत) रहा। सोरधन में बरसात के बाद के मौसम में तो उतना नहीं, परंतु खरीफ के मौसम में काफी सुधार देखा गया। इसलिए सोरधन के मामले में भावी अनुसंधान में रबी के मौसम को प्राथमिकता देनी चाहिए। बाजरे की पैदावार में काफी उतार-चढ़ाव देखने में आया जिसके लिए आंशिक तौर पर फसलों की बीमारी जिम्मेदार थी। समय पर जुताई कर पाना, अच्छी किस्म के बीजों व आदानों की कमी, उचित मूल्य प्रोत्साहनों व विपणन सुविधाओं का न होना तथा अनाज भंडारण की घटिया व्यवस्था मोटे अनाज की पैदावार के कुछ अन्य गंभीर कारण हैं। तिलहनों के मामले में तोरिया (रेपसीड), सरसों और सोयाबीन की पैदावार में मुख्य तौर पर वृद्धि हुई।

वर्षा-सिंचित इलाकों में प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल के संपूर्ण परिदृश्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि किसानों ने बीजों की उपलब्धता के आधार पर उन्नत फसलों और उनकी किस्मों को अपनाया है लेकिन संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों के अपनाने की स्थिति उत्साहवर्द्धक नहीं है। उर्वरकों का इस्तेमाल कपास, मूंगफली और सोयाबीन जैसी कुछ उच्च मूल्य की वर्षा-सिंचित फसलों में ही किया गया।

दबाव

वर्षा-सिंचित क्षेत्रों को कई जैव भौतिकी और सामाजिक-आर्थिक दबाव झेलने पड़ते हैं जिनसे फसलों और मवेशियों की उत्पादकता काफी हद तक सीमित हो जाती है। मुख्य दबाव हैं: (1) कम व अनिश्चित वर्षा; (2) भूमि अवक्रमण; (3) आदानों के इस्तेमाल और प्रौद्योगिकी अपनाने के कम स्तर; (4) कम भारवाही शक्ति की उपलब्धता; (5) चारे की अपर्याप्त उपलब्धता तथा कमजोर मवेशी और कम मांस उत्पादन; (6) किसानों को संसाधनों की कमी तथा अपर्याप्त ऋण सुविधाएं।

(क) बुनियादी ढांचा

योजना आयोग की दूरदर्शितापूर्ण मदद से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने 1971 में नेटवर्क/कृषि जलवायु मृदा ढांचे पर आधारित अनुसंधान कार्यक्रम शुरू किया। योजना आयोग द्वारा चुने गए जलवायु जोनों पर स्थान विशिष्ट अनुसंधान कार्यक्रमों के विकास की दृष्टि से विचार किया गया। साथ ही स्थान विशिष्ट अनुसंधान कार्यक्रमों के कुशल विकास के लिए समर्थन प्रदान करने हेतु कृषि जलवायु स्थितियों पर भी अनुसंधान किया गया। इस संपर्क में ऐतिहासिक मौसम आंकड़ों का विश्लेषण किया गया तथा व्यापक डाटा बेस विकसित किया गया। पिछले तीन दशकों में वर्षा-सिंचित क्षेत्रों के कृषि जलवायु तथा सामाजिक-आर्थिक स्वरूप निर्धारण के आधार पर अंतर्शाखीय व स्थान-विशिष्ट दृष्टिकोण के जरिए कुशल पौध-संरक्षण की प्रौद्योगिकियां विकसित की गईं।

1980 के दशक में राष्ट्रीय आदर्श जलसंभर विकास कार्यक्रम शुरू किया गया जो 47 विभिन्न कृषि परिस्थितिक स्थितियों में फैला हुआ था। प्रयास सफल रहा। वर्षा जल के संग्रहण के कारण भूजल के पुनर्भरण के क्षेत्र में विशेष रूप से प्रभावशाली लाभ देखे गए। देश में किसानों ने उपयुक्त बीज सामग्री की उपलब्धता को देखते हुए उन्नत फसलों और किस्मों को अपनाया।

(ख) तकनीकी

—किसान के दृष्टिकोण को समझने में कमी : न तो अनुसंधान फार्म पर और न ही किसानों के खेतों में चलाए गए परिचालानात्मक अनुसंधान कार्यक्रमों में तकनीकी विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों की सूची के साथ-साथ किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर विचार किया गया।

—स्टेशन पर अनुसंधान के क्रम में फार्म पर अनुसंधान की कमी। प्रौद्योगिकी विकास के किसी भी भागीदारी वाले माध्यम में स्थान विशिष्ट समस्या के समाधान के लिए प्रौद्योगिकी विकल्पों का मूल्यांकन ग्राहकों द्वारा प्रौद्योगिकी अपनाने की दृष्टि से पूर्णतया आवश्यक होता है। अब तक किए गए अधिकांश अनुसंधान प्रदर्शन माध्यम में किए गए थे।

—एकल प्रौद्यागिकी समाधानों के विकास पर निर्भरता। प्रौद्योगिकी अपनाने की प्रेरणा के लिए प्रौद्योगिकी विकल्प बाक्स का दृष्टिकोण ही एकमात्र साधन है। इससे किसानों को सामाजिक-आर्थिक स्थितियों, जरूरतों और

प्राथमिकताओं के आधार पर तकनीक विशेष चुनने में मदद मिलेगी।

—खेती की प्रणालियों के परिप्रेक्ष्य की कमी। पैदावार प्रणालियों के मवेशी प्रबंध, कृषिवानिकी और बागवानी जैसे विभिन्न घटकों को वांछित स्तर तक कृष्य फसल पैदावार के साथ समन्वित नहीं किया गया। इसलिए घटकों के बीच की सहक्रिया का पूरा-पूरा फायदा नहीं उठाया जा सका।

—उपलब्ध स्वदेशी तकनीकी ज्ञान को समझने का अभाव। विश्व भर में कृषक समुदाय के पास ज्ञान का व्यापक भंडार है। दरअसल स्वदेशी तकनीकी ज्ञान को स्टेशन अनुसंधान और पी.टी.डी. के जरिए समृद्ध बनाने के संसाधनों की कमी वाले वर्षा-सिंचित इलाकों में प्रौद्योगिकी प्रसार की सीढ़ी बनाया जाना चाहिए।

(ग) प्रौद्योगिकी हस्तांतरण

—विस्तार संबंधी बुनियादी ढांचे की, विशेष रूप से दूरदराज के इलाकों की अपर्याप्तता;

—उपयुक्त विकासीय बुनियादी ढांचे का अभाव (विपणन, आदान और ऋण व्यवस्था आदि);

—विस्तार कार्यक्रमों में किसानों की मोटे तौर पर आदान-आधारित भागीदारी। किसानों की परस्पर आदान-प्रदान वाली भागीदारी मौजूद नहीं रही है, जबकि दीर्घावधि में किसानों की स्वैच्छिक भागीदारी का यही एकमात्र जरिया है;

—विकास कार्यक्रमों में विभिन्न क्षेत्रों (कृषि, बागवानी, पशु पालन आदि) में कमजोर तालमेल;

—ग्रामीण समाज के ढांचे में विवादों/मतभेदों को सुलझाने के लिए समुदाय को प्रेरित करने के प्रयासों की कमी, साझा संप्रति संसाधन वर्षा-सिंचित इलाकों में अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं, जिनका समाज के प्रयासों के बिना कुशलतापूर्वक प्रबंधन नहीं किया जा सकता।

आमतौर पर एक स्थान पर विकसित प्रौद्योगिकियों में, अनुसंधान व विकास पर और खर्चा किए बिना अन्य स्थानों पर अपनाए जाने की क्षमता की कमी होती है। वर्षा-सिंचित क्षेत्रों के लिए मौजूद खतरा उन्नत शुष्क भूमि प्रौद्योगिकियों के अपनाने और प्रसार में एक जबर्दस्त चुनौती सिद्ध होता है। मवेशियों के उच्च जमाव, परिस्थितिक विषमता, कमजोर बाजार आधार, आदान समर्थन की कमजोर प्रणाली, श्रम सघनता के कारण वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास के लिए वैकल्पिक अंतर चरण व्यवस्थाओं को विकसित करने पर अधिक ध्यान देना जरूरी है। इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्टेशन-पर अनुसंधान से जुड़े फार्म-पर अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है।

अड़चनों पर विजय

(1) प्रौद्योगिकी विकास

कुछेक गंभीर समस्याओं के समाधान और भागीदारी माध्यम में प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए हाल ही में नई दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने एक बड़ी परियोजना शुरू की। भिन्न-भिन्न कृषि पारिस्थितिक प्रणालियों के तहत शुरू की गई इस राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना में शुष्क, वर्षा-सिंचित, सिंचित, तटवर्ती तथा पर्वतीय क्षेत्रों को शामिल किया गया। परियोजना के अंतर्गत वर्षा-सिंचित पारिस्थितिक प्रणाली में देश के लगभग 312 जिलों में अनुसंधान तथा विकास गतिविधियों में समन्वय की जिम्मेदारी 13 मदों के बारे में थी, जिसके लिए 130 करोड़ रुपये का बजट परिव्यय रखा गया। जिन 5 प्रमुख मदों पर परियोजना में जोर दिया गया उनमें चावल, तिलहन, दालें, कपास शामिल हैं।

उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर कृषि क्षेत्र के बारे में दबावों और प्राथमिकताओं को पहचाना गया है और उचित परियोजनाएं शुरू की गई हैं। जिन प्रमुख विषयों पर अनुसंधान और प्रौद्योगिकी विकास संबंधी ध्यान केंद्रित किया जा रहा है उनमें, (क) वर्षा जल प्रबंध (ख) जलसंभर विकास (ग) अतिरिक्त जल निकासी व्यवस्था (घ) कम लागत वाले पोषक तत्व प्रबंध विकल्प (ड) समन्वित कीट प्रबंध (च) खरपतवार नियंत्रण (छ) विभिन्न फसलों के उचित 'कल्टिवर्स' की पहचान और विकास (ज) वैकल्पिक भू-उपयोग प्रणालियां तथा बागवानी विकास (झ) जैव तत्वों में वृद्धि और मृदा गुणवत्ता में सुधार (ल) मछलियों, कुक्कट, बकरियों तथा अन्य मवेशियों के उत्पादन में वृद्धि

और दुग्ध उद्योग का विकास (ट) चारा उत्पादन और आहार (फीड) गुणवत्ता में सुधार तथा (ठ) भंडारण और फसलोत्तर प्रौद्योगिकी शामिल हैं। उपरोक्त अनुसंधान क्षेत्रों में 'आन-फार्म' स्थितियों में गतिविधियां चलाई जाएंगी, जिसमें किसानों का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जाएगा।

(2) प्रौद्योगिकी हस्तांतरण

स्थायी पैदावार पाने के लिए वर्षा-सिंचित इलाकों के विकास के लिए रणनीतिबद्ध नियोजन अत्यंत महत्वपूर्ण और जरूरी है। इस संदर्भ में उचित यही होगा कि कार्यक्रम की योजना अल्पावधि (5 वर्ष), मध्यमावधि (10 वर्ष) और दीर्घावधि (20 वर्ष) के लिए बनाई जाए।

अल्पावधि समस्याओं का समाधान करने वाली प्रौद्योगिकियों का उद्देश्य किसानों को तत्काल लाभ पहुंचाना है। इनमें दोहरी प्रौद्योगिकी शामिल हैं जिन्हें किसान यथासंभव जलसंभर के आधार पर अपने खेतों के स्तर पर अपना सकते हैं तथा जिसमें बाहरी एजेंसियों की सहायता बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती। अल्पावधि उपायों में सूखा झेल सकने वाली किस्में, कीलाइन जुताई, ग्रीष्मकालीन जुताई, ढलानों पर जुताई, बुवाई भूमि पर छंटाई की गई पेड़-पत्तियों का आच्छादन व खाद का इस्तेमाल शामिल हैं। इन प्रौद्योगिकियों का उद्देश्य 2 से 5 वर्ष की छोटी-सी अवधि में असर दिखाना है।

किसानों को एक बार जब प्रौद्योगिकियां अपनाने के लाभों का पता चलने लगता है (अल्पावधि उपायों के जरिए) तो वे मध्यमावधि और दीर्घावधि उपायों को अपनाने में शामिल होने के लिए उत्सुक हो सकते हैं। किसान की भागीदारी वाले प्रौद्योगिकी विकास का समन्वित जलसंभर प्रबंध मध्यावधि उपायों का केंद्र बिंदु है। इन प्रौद्योगिकियों में खेती की प्रणालियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। जलनिकासी नालियों का नियमितीकरण, भूजल पुनर्भरण, छोटे पैमाने पर मध्यमाकार जलाशयों में जल संग्रह तथा मौजूदा तालाबों की मरम्मत आदि तथा वैकल्पिक भू-उपयोग प्रणालियों को अपनाना मध्यमावधि उपायों के कुछ उदाहरण हैं।

उथली खंदकों से भरे इलाकों का वनीय चरागाहों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, जिससे मवेशी उद्यमों को बढ़ावा मिलेगा। इलाकों को और अधिक अवक्रमण से बचाने के लिए जहां संभव हो, यांत्रिक रोक खड़ी करने और खंदकों की ठलानों के स्थिरीकरण का काम किया जाना चाहिए। दीर्घावधि उपायों में वे ढांचे भी शामिल हैं जो 2000-5000 हेक्टेयर जैसे वृहद पैमाने पर भूमि पर प्रवाह के नियंत्रित करने और जलसंकट क्षेत्रों के उच्च प्रवाह को घटाने के लिए बनाए जाते हैं। दीर्घावधि उपायों के अंतर्गत बनाई गई परिसंपत्तियां स्थायी होती हैं और इनके लिए निवेश की जरूरत होती है।

(3) फार्म पर अनुसंधान तथा भागीदारी प्रौद्योगिकी विकास

अग्रणी प्रदर्शनों के वर्तमान कार्यक्रमों के अलावा, वर्षा-सिंचित क्षेत्र में 'फार्म-पर' अनुसंधान के लाभों को मजबूत करने के लिए 200 से 500 हेक्टेयर तक के लघु जलसंभरों के आधार पर भागीदारी माध्यम में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की प्रायौगिक परियोजनाएं शुरू की जानी चाहिए। यह जरूरी है कि वर्षा-सिंचित इलाकों में विस्तार सेवाओं को सुदृढ़ किया जाए जिसके लिए किसान विकास केंद्र/फार्म प्रशिक्षण केंद्र खोले जाएं। किसानों को बागवानी, वैकल्पिक फसलों तथा व्यावहारिक प्रौद्योगिकी के प्रदर्शन के बारे में कौशल-प्रधान प्रशिक्षण देने पर जोर दिया जाना चाहिए। इसके अलावा रेडियो, टी.वी. और निजी चैनलों जैसे माध्यमों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि कृषि संबंधी कार्यक्रमों के प्रतिदिन प्रसारण से किसानों को जरूरी सहायता प्रदान की जा सके। विभिन्न विभागीय एजेंसियों को अधिक उपयोगी व सक्रिय बनाया जाना चाहिए। वर्षा-सिंचित इलाकों में अनुसंधान, विस्तार और ग्राहक प्रणाली के बीच कारगर संपर्क कायम किया जाना चाहिए। किसानों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्रौद्योगिकी विकास, विस्तार रणनीतियां तैयार करने और मौजूदा दबावों का पता लगाने के लिए संपूर्ण दृष्टिकोण को प्राथमिकता देनी होगी। बहुशाखीय वैज्ञानिक दल को किसानों के साथ मिलकर यह काम करना होगा, ताकि किसानों तक पहुंच में दूरी को कम से कम किया जा सके।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंध के क्षेत्र में पारंपरिक तकनीकी ज्ञान किसानों के पास है। इस ज्ञान या इस ज्ञान के परिष्करण पर आधारित प्रौद्योगिकियों को किसान अधिक तत्परता से स्वीकार करेंगे। इसलिए भूमि अवक्रमण को नियंत्रित करने तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए पारंपरिक ज्ञान के परिष्करण को पी.टी.डी. का महत्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए।

अनुसंधानकर्ताओं, लाइन विभाग/गैर-सरकारी संगठनों और किसानों के बीच परस्पर संपर्कों को विकसित करने की जरूरत है जो प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की सफलता के लिए जरूरी है। जलसंभर-आधारित प्रौद्योगिकियों के क्रियान्वयन के लिए पंचायती राज संस्थानों का उपयोग किया जा सकता है। जलसंभर प्रौद्योगिकियों की तेजी से स्वीकार्यता और क्रियान्वयन के लिए उपयोगकर्ता समूह, ग्रामीण स्वयंसेवकों (मित्र किसान) की अवधारणा को प्रोत्साहित करना होगा।

संघ दृष्टिकोण

अभी कई सरकारी संस्थान, गैर-सरकारी संगठन और निजी क्षेत्र/निगमित क्षेत्र संगठन कृषि पैदावार बढ़ाने और भू-अवक्रमण रोकने की दिशा में काम कर रहे हैं। ये छिटपुट प्रयास दक्ष जनशक्ति की कमी और नई अनुसंधान पहलों से लगातार उन्नत होते रहने वाले ज्ञान भंडार तक सीमित पहुंच के कारण अक्सर अवरुद्ध हो जाते हैं। इसलिए ज्ञान व अनुभव बांटने के लिए संघ दृष्टि को अपनाने की जरूरत है, ताकि सही परिप्रेक्ष्य में समस्याओं का समाधान किया जा सके।

लघु, मध्यम और दीर्घावधि प्रौद्योगिकियों को, जहां संभव हो, जलसंभर स्तर पर या फिर इकाई क्षेत्र आधार पर समन्वित करना और इन सबको साथ-साथ अमल में लाना बहुत जरूरी है। इससे न केवल शुरुआत से ही लोगों का सक्रिय सहयोग मिलता रहेगा, बल्कि यह सहयोग पूरे कार्यक्रम के दौरान बना भी रहेगा।

नीतिगत मुद्दे

वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में अनुसंधान रणनीतियों के साथ-साथ उचित नीतिगत पहलों का होना भी जरूरी है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पंचायती राज संस्थानों की कारगर भागीदारी के लिए एक ऐसा संस्थागत ढांचा तैयार करना जरूरी है, जो स्वत: ही जलसंभर विकास कार्यक्रमों के लिए जवाबदेह हों। समूह गतिविधि होने के नाते, किसी जलसंभर में उत्पन्न अतिरिक्त संसाधनों को तब ही उत्पादकता के लाभों में बदला जा सकता है जब परिसंपत्तियों को एक लंबी अवधि तक बनाए रखा जाए और लाभों को समान रूप से बांटा जाए। 'पानी पंचायतों' की तर्ज पर 'भूमि पंचायतों' का गठन एक विकल्प हो सकता है।

वर्षा-सिंचित फसलों पर फसल बीमा योजनाएं लागू करने से किसानों को उच्च आदानों के प्रयोग और जोखिमों के बावजूद नई प्रौद्योगिकियां अपनाने की प्रेरणा मिल सकती है। अगर उर्वरकों और कीटनाशकों जैसे महंगे आदानों का प्रयोग सही ढंग से तथा दीर्घावधि परिसंपत्तियों का संग्रहण ढांचों के रूप में निर्माण के लिए करना है, तो ऋण उपलब्धता और आदान आपूर्ति प्रणाली में काफी कुछ सुधार करना होगा। अंत में फार्म पर अनुसंधान में किसानों की भागीदारी पर बल देने वाली कुछेक प्रायोगिक परियोजनाएं शुरू करनी होंगी। दलहनों, तिलहनों और कपास के बारे में वस्तु-आधारित मिशन के अतिरिक्त इन परियोजनाओं को क्षेत्र-आधारित विकास की दृष्टि से शुरू करना होगा। ऐसी परियोजनाओं में, जलसंभर जैसे एक क्षेत्र की संपूर्ण पैदावार बढ़ाने के लिए जरूरी सभी प्रौद्योगिकियों और आदानों को व्यवस्थित करना होगा तथा 5 से 10 साल की अवधि तक आर्थिक फायदों को ठीक-ठीक प्रलेखित करना होगा।

भावी रणनीतियां

वर्षा-सिंचित कृषि पारिस्थितिकी प्रणाली में स्थायित्व के लिए कृषि प्रणाली माध्यम में प्राकृतिक संसाधनों के समन्वित विकास को कुंजी माना जाता है। निरंतरता के मुद्दों में 5 प्रमुख अंग होते हैं, यथा—पैदावार के स्तर को जहां तक व्यावहारिक हो, कृषि पारिस्थितिकी क्षमता तक इष्टतम बनाना; गतिशील आर्थिक व्यवहार्यता; प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण व कुशल उपयोग; विविधीकरण, पर्यावरण सुधार और सामाजिक प्रासंगिकता। वर्षा-सिंचित कृषि में

स्थायित्व बनाए रखने में कठिनाइयां भी कई हैं तथा वे देशभर के भिन्न कृषि-परिस्थितिक उप क्षेत्रों में अलग-अलग हैं। इसलिए भविष्य के अनुसंधान में दिए जाने वाले बल से ऐसी प्रौद्योगिकियों के विकास को बढ़ावा मिलना चाहिए, जो सभी प्रमुख घटकों को एक सह-क्रियात्मक संतुलन में रखें जिससे कि तरह-तरह के कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में वर्षा-सिंचित पैदावार को निरंतरता मिले।

वर्षा-सिंचित कृषि में जल एक सर्वोत्तम उत्पादन कारक हैं। इसलिए वर्षा-सिंचित कृषि अनुसंधान करते समय जल को केंद्रीय संसाधन माना जाना चाहिए। भविष्य में अनुसंधान सुस्पष्ट जलसंभर इकाइयों पर किया जाना चाहिए। इसके लिए अंतरशाखीय सामूहिक प्रयास की जरूरत होगी जिनमें सामाजिक-आर्थिक और जैव-भौतिकी शाखाओं की मदद लेनी होगी। मृदा में जैविक पदार्थ में निरंतर आने वाली कमी एक और चुनौतीपूर्ण मुद्दा है, जिसका कारण बायोमास का कम उत्पादन तथा फसल व मवेशी खेती का अपर्याप्त समन्वय है। इसलिए अनुसंधान रणनीतियों तथा वैकल्पिक भूमि प्रयोग प्रणालियों में चारे की जरूरतों को पूरा करने के लिए उचित कृषि-वानिकी और फसल विविधीकरण रणनीतियों को तथा मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले फसल बायोमास को शामिल किया जाना चाहिए।

वर्षा सिंचित क्षेत्रों में भविष्य में इन अनुसंधानों पर जोर रहेगा:

—संसाधन गुणनिर्धारण और डाटाबेस डिजिटीकरण

- विभिन्न पैदावार प्रणालियों में दीर्घावधि फसल मौसम आंकड़ों का संग्रहण व संकलन;
- कृषि-मौसम परामर्श सेवाओं के लिए प्रतिक्रिया कृषि रणनीतियों और परिचालनात्मक कृषि-मौसम विज्ञान माडलों का विकास;
- प्रमुख वर्षा-सिंचित पैदावार प्रणालियों के लिए जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण गुणवत्ता और फसल वृद्धि का माडल बनाना;
- मौसम-कीटनाशक/रोग संबंध विकसित करना;
- फसलों और मवेशियों पर पर्यावरण संबंधी दबाव।

—जलसंभर आधार पर वर्षा जल प्रबंध

- यांत्रिक व वनस्पति साधनों का उचित मिश्रण;
- जल-संग्रहण और भूजल पुनर्भरण के लिए डिजाइन;
- कृषि प्रणाली परिप्रेक्ष्य और प्रौद्योगिकी विकास में फार्म-पर अनुसंधान पर जोर;
- मृदा-जल-पोषक तत्व प्रबंधन में समन्वय तथा भूमि-अवक्रमण समस्याओं को दूर करना।

—परिस्थितिकी अनुकूल फसलों व फसल प्रणालियों से पैदावार व स्थायित्व बढ़ाना

- जीवीय व गैर-जीवीय दबावों को झेल सकने वाले स्थिर जीनोटाइप;
- फसल के बाद का प्रबंध, मूल्यवर्द्धन और उत्पाद विकास;
- अपारंपरिक फसलों, फसल बाद के प्रबंध, मूल्य-वर्द्धन और उत्पाद विकास के जरिए फसलों के विविधीकरण की रणनीतियां;
- पारंपरिक ज्ञान तकनीकों का आधुनिक ज्ञान, परिष्करण व उपयोग के साथ समन्वय।

—वन, कृषि, बागवानी, चरागाह प्रणालियों पर जोर देने वाली वैकल्पिक भू उपयोग रणनीतियां। चयनात्मक यंत्रीकरण से अधिक कुशलता।

—मवेशी प्रबंध का कृषि प्रणाली अनुसंधान के जरिए वर्षा-सिंचित कृषि से समन्वय।

—किसान भागीदारी दृष्टिकोण द्वारा प्रौद्योगिकी और परिष्करण आकलन।

- प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए आत्मनिर्भर आदान प्रणालियां विकसित करना;
- पैदावार प्रणाली माडल में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण;
- पुरानी एवं नई प्रौद्योगिकियों का प्रभाव विश्लेषण;
- फार्म-अनुसंधान के जरिए भागीदारी प्रौद्योगिकी का विकास। ❑

(श्री भाटिया भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली में सहायक महानिदेशक (कृषि) और श्री सिंह हैदराबाद के केन्द्रीय शुष्क भूमि कृषि अनुसंधान संस्थान में निदेशक हैं।)

गांवों की कायापलट के लिए तकनीक हस्तांतरण

टी.वी. सत्यनारायणन

तकनीक हस्तांतरण ही कृषि विकास के पहियों को गतिमान रखता है। नीति-निर्माताओं, योजनाकारों और वैज्ञानिकों द्वारा आरंभ, नियोजित एवं विकसित कृषि तथा ग्रामीण विकास रणनीति की सफलता का दारोमदार विस्तार ढांचे और इसके कर्मियों की प्रभावशीलता पर निर्भर करता है। तकनीक को प्रयोगशाला से निकालकर खेतों तक पहुंचाने का काम यही कार्यकर्ता करते हैं। इस तकनीक हस्तांतरण से गांवों के लोगों और किसानों तथा खेती की नई तकनीक व विधियां अपनाने वाले अन्य व्यक्तियों का जीवन ही बदल गया है। वे बड़ी खुशी के साथ अपने ये अनुभव और लोगों के साथ बांटते हैं। एक स्थान पर प्राप्त सफलता दूसरों को भी प्रेरणा देती है और इस प्रकार सफलताओं का दायरा बढ़ता जाता है।

हालांकि देश के सभी हिस्सों में सफलता की कहानियों की असंख्य मिसालें मौजूद हैं, तथापि तकनीक हस्तांतरण के दो शानदार उदाहरण तत्काल उभर कर आते हैं। अस्सी के दशक के मध्य में, जब कृषि में देश के अपेक्षाकृत पिछड़े इलाकों में हरित-क्रांति अपने पांव पसार रही थी, पत्रकारों का एक दल जबलपुर कृषि विश्वविद्यालय के करीब के एक गांव में गया। यह वह समय था जब पैदावार की संभावनाओं और नमी के दबाव को झेलने की क्षमता की दृष्टि से ज्वार की नई किस्में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रही थीं। नई किस्म और पैदावार तकनीक का लाभार्थी एक बूढ़ा किसान था जिसका एक छोटा-सा खेत था। विश्वविद्यालय के विस्तार वैज्ञानिकों के साथ पत्रकारों को आया देखकर वह बहुत प्रसन्न था। हाल ही में इस किसान की बम्पर फसल हुई थी। जब उससे पूछा गया कि नई तकनीक के परिणामस्वरूप उसकी आमदनी कितनी बढ़ी, तो उसने जवाब दिया कि ठीक तो नहीं मालूम, लेकिन वह रहस्य की एक बात उन्हें बताना चाहता है। उसका एक बड़ा पुराना सपना था कि वह रामेश्वरम तथा दक्षिण भारत के मंदिरों की यात्रा करे। लेकिन वह यह यात्रा कर ही नहीं पाया क्योंकि पारंपरिक किस्मों की खेती के जरिए उसकी आमदनी बहुत कम होती थी। बड़े ही संतोषपूर्वक उसने बताया कि नई तकनीक अपनाने से उसे अच्छी आमदनी हुई जिससे वह अपनी पत्नी के साथ यह यात्रा कर सका। मजाक में वह बोला, ''काश मैं जवान होता, तो पता नहीं इस पैसे से क्या-क्या कर डालता।''

तकनीक हस्तांतरण की सफलता का एक और उदाहरण केरल में कोच्चि के वाईपीन द्वीप में देखने को मिला। इस छोटे से द्वीप के लोग इतने गरीब थे कि परिवारों में मृत्यु जैसी कठिन परिस्थिति से निपटने के लिए उन्होंने थोड़ा-थोड़ा पैसा मिलाकर एक

विस्तार ढांचे की मजबूती का एक तरीका संभवतः राजनीतिक पार्टियां हो सकती हैं जो अपने प्रशिक्षित विस्तार कार्यकर्ताओं के माध्यम से दूरदराज के और पिछड़े इलाकों तक पहुंच सकती हैं। यह काम अंततः उनके अपने ही हित में होगा क्योंकि इस काम से जिन इलाकों को लाभ पहुंचेगा, वे इन पार्टियों के लिए विश्वसनीय 'वोट बैंक' बन सकेंगे।

सहकारी संस्था बना ली थी। पास में ही भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान था। इस द्वीप में सहकारी संगठन की मौजूदगी को देखते हुए इस संस्थान को लगा कि अपनी तकनीक को असली परिस्थितियों में परखने का यह एक उपयुक्त स्थान है। सहकारी संस्था के सदस्य स्वेच्छा से मजदूरी के रूप में अपना योगदान देने और नई तकनीक अपनाने के लिए काफी उत्साहित थे। बंजर भूमि को मछली फार्मों में बदल दिया गया, जहां तेजी से प्रजनन करने वाली मछली की प्रजातियां रखी गईं। मछली-तालाबों के बीच की खाली जमीन पर अधिक पैदावार देने वाले नारियल के पेड़ लगाए गए। शीघ्र ही क्षेत्र के लोगों ने नई तकनीक की बदौलत काफी पैसा कमाना शुरू कर दिया और उनका रहन-सहन बेहतर होने लगा। मछली और नारियल की बढ़िया फसल होने से आमदनी का एक अच्छा-खासा हिस्सा ये लोग अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर लगा रहे हैं।

सफलता की ये कहानियां हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, नीली क्रांति और न जाने किन-किन क्रांतियों की सफलता का उदाहरण हैं। सफलताएं तो सूखे तथा अर्ध-सूखे इलाकों के अलावा लवणता वाली ऊसर भूमियों व क्षारीय मिट्टियों, झूम खेती की समस्या वाले वन क्षेत्रों और भूमि के कटाव की समस्या से ग्रस्त तटवर्ती इलाकों में भी मिली हैं।

तकनीक हस्तांतरण एक जटिल काम है जिसके लिए बहुशाखीय एवं बहु-संस्थागत दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। इसके कृषि विभागों, अनुसंधान संगठनों, शिक्षा संस्थानों और विस्तार एजेंसियों के बीच गहरे तालमेल की जरूरत होती है।

मोटे तौर पर कृषि व सम्बद्ध पैदावार तकनीकों के विस्तार कार्य के प्रति समर्पित चार मुख्य व्यवस्थाएं हैं : केन्द्रीय कृषि मंत्रालय और राज्यों के कृषि विभागों की विस्तार प्रणाली, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की विस्तार प्रणाली, ग्रामीण विकास विभाग और गैर-सरकारी संगठनों का विकास कार्य।

तकनीक हस्तांतरण से जुड़े लोगों की बदौलत ही देश की अनाज की पैदावार चार गुना बढ़ी है। पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के समय में देश का खाद्यान्न उत्पादन 5.09 करोड़ टन था जो आज 20 करोड़ टन से भी अधिक हो गया है। इस अवधि में गेहूं के उत्पादन में भी जबर्दस्त उछाल आया है। इस दौरान गेहूं की पैदावार 65 लाख टन से दस गुना से भी अधिक बढ़कर 7 करोड़ टन हो गई है। उधर चावल की पैदावार 2.06 करोड़ टन से बढ़कर 8.6 करोड़ टन हो गई है। मकई, गन्ने, कपास, आलू तथा कई अन्य फसलों में भी अच्छी-खासी वृद्धि हुई है। इसके अलावा भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व का सबसे बड़ा देश भी बन गया है। कृषि व सम्बद्ध क्षेत्रों में कुछेक उपलब्धियों के उदाहरण के रूप में फलों के उत्पादन में भारत का स्थान पहला और सब्जियों में दूसरा है।

पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के समय में देश का खाद्यान्न उत्पादन 5.09 करोड़ टन था जो आज 20 करोड़ टन से भी अधिक हो गया है। इस अवधि में गेहूं के उत्पादन में भी जबर्दस्त उछाल आया है। इस दौरान गेहूं की पैदावार 65 लाख टन से दस गुना से भी अधिक बढ़कर 7 करोड़ टन हो गई है।

इन उपलब्धियों के बावजूद कृषि विकास के क्षेत्र में अभी कई कमियां हैं जिन्हें पाटना है। फसल व क्षेत्र दोनों ही दृष्टियों से उत्पादन में असंतुलन बना हुआ है। कई फसलों का उत्पादन-स्तर अभी उन्नत विश्व औसत से भी काफी पीछे है। इन कमियों को दूर करना विस्तार-तंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती है जिसकी जिम्मेदारी तकनीक को किसानों तक पहुंचाने की है।

मुख्य विस्तार कार्य केन्द्रीय कृषि मंत्रालय और राज्यों के कृषि विभागों द्वारा किया जाता है जो बेहतर उत्पादन तकनीकों के बारे में विस्तार कार्यकर्ताओं और किसानों को निरंतर सूचना, प्रशिक्षण तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख नीतिगत दिशा-निर्देश कृषि एवं सहकारिता विभाग के विस्तार डिवीजन द्वारा तय किए जाते हैं और विशिष्ट कार्यक्रमों व क्रियाकलापों को विस्तार निदेशालय अमल में लाता है। निदेशालय की चार तकनीकी इकाइयां हैं : विस्तार प्रबंध, विस्तार प्रशिक्षण, फार्म सूचना

तथा फार्म महिला विकास कार्यक्रम। विस्तार प्रबंध इकाई के कई कार्यक्रम व योजनाएं हैं, जो विस्तार सेवाओं को मजबूती प्रदान करती हैं। इनमें से एक स्वयंसेवी संगठनों के जरिए कृषि विस्तार का है जो विस्तार सेवाओं के दायरे व उनकी कार्यकुशलता को मजबूत बनाता है, जिसके लिए चुने हुए गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों और प्रमुख विस्तार सेवाओं को समन्वित किया जाता है। एक और योजना अनुसंधान विस्तार-किसान संपर्क को मजबूती प्रदान करने यानी कृषि विभाग और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संगठनों के बीच संपर्क स्थापित करने की है। इसके तहत अनुसंधान और विकास के लिए संयुक्त रणनीतियां तैयार की जाती हैं।

पिछले साल शुरू की गई एक नई योजना तकनीक प्रसार में नवीनताओं की है। यह योजना विश्व बैंक की सहायता से चल रही राष्ट्रीय कृषि तकनीक परियोजना की एक घटक है। इसका उद्देश्य चुने हुए राज्यों में अनुसंधान और विस्तार सेवाओं को सुदृढ़ बनाना और जिला-स्तर पर सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों के सहयोग वाली नई संस्थागत व्यवस्थाओं की जांच है। चुने हुए छह राज्यों के प्रत्येक प्रायोगिक जिले में एक-एक कृषि विस्तार प्रबंध एजेंसी को एक सोसायटी के तौर पर पंजीकृत कराया गया है। तकनीक हस्तांतरण कार्यक्रम के क्रियान्वयन की एक महत्वपूर्ण बात खेतिहर स्त्रियों को दिया जाने वाला बढ़ता महत्व है। स्त्रियों को 'अदृश्य किसान' कहा जाता है। वे घर संभालने के थकाऊ कामों के साथ-साथ बीजों से लेकर बुवाई, खाद देने, खरपतवार हटाने, फसल कटाई, गहाने, सुखाने, चट्टे लगाने और भंडार के कामों में भी प्रमुख भूमिका निभाती हैं। दुग्ध व्यवसाय में उनकी भूमिका पुरुषों से कहीं अधिक होती है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्वभर में तकनीक हस्तांतरण कार्यक्रम पुरुष-प्रधान होते हैं। स्त्री-किसानों को कृषि विस्तार सेवाओं का केवल 5 प्रतिशत हिस्सा मिल पाता है और विश्व के विस्तार कर्मचारियों में से केवल 15 प्रतिशत स्त्रियां हैं।

भारत का फार्म महिला विकास कार्यक्रम काफी हद तक इस असंतुलन को दूर करने की कोशिश करता है। नौवीं योजना के दौरान 12 राज्यों में एक-एक जिले में लागू करने के लिए 'कृषि में महिलाएं' नामक एक योजना मंजूर की गई है। योजना के अंतर्गत खेतिहर महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए गए हैं। इसके अलावा राज्य-स्तर पर भी कई योजनाएं हैं जो खेतिहर महिलाओं को प्रशिक्षण देती हैं। ये योजनाएं तमिलनाडु, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गुजरात और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में चल रही हैं।

नौवीं योजना के दौरान 12 राज्यों में एक-एक जिले में लागू करने के लिए 'कृषि में महिलाएं' नामक एक योजना मंजूर की गई है। योजना के अंतर्गत खेतिहर महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए गए हैं। इसके अलावा राज्य स्तर पर भी कई योजनाएं हैं जो खेतिहर महिलाओं को प्रशिक्षण देती हैं।

शीर्षस्थ अनुसंधान संगठन, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के भी महिलाओं के लिए अपने कार्यक्रम हैं। इसने भुवनेश्वर में राष्ट्रीय खेतिहर महिला केन्द्र और भोपाल में एक उपकेन्द्र खोला है। यह राष्ट्रीय केन्द्र महिलाओं को फसल पैदावार और कटाई उपरांत गतिविधियों में तकनीक की दृष्टि से सम्पन्न बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाता है ताकि महिलाओं को वैज्ञानिकों द्वारा विकसित सभी नवीनतम तकनीकों का ज्ञान हो सके। केन्द्र के कामकाज में पशुपालन, मछली पालन, बागवानी और रेशमकीट पालन जैसे क्षेत्रों में महिलाओं के लिए विशिष्ट तकनीकों का विकास भी शामिल है। भोपाल का उपकेन्द्र कृषि संबंधी कामकाज में महिलाओं की मेहनत कम करने के लिए कृषि इंजीनियरी से जुड़े अनुसंधान का चयन करता है। सामान्य कृषि समुदाय के स्त्री-पुरुष दोनों ही के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अपने कारगर विस्तार कार्यक्रम हैं। सबसे महत्वपूर्ण कृषि विज्ञान केन्द्र कार्यक्रम है। इन गतिविधियों में खेत पर तकनीकों का परीक्षण, सेवाकाल में विस्तार कर्मियों की जांच और प्रमुख प्रदर्शनों का आयोजन शामिल है।

कुल मिलाकर 261 कृषि विज्ञान केन्द्र हैं जो उत्पादन तकनीकों के प्रसार के लिए अन्य एजेंसियों के सहयोग से

प्रमुख प्रदर्शनों की व्यवस्था के अलावा किसान मेलों, फील्ड दिवसों, किसान गोष्ठियों, फिल्म प्रदर्शनों, रेडियो व टी.वी. वार्ताओं और प्रदर्शनियों का आयोजन करते हैं तथा ग्रामीण नौजवानों के लिए प्रशिक्षण कोर्स तथा सेवारत कर्मियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाते हैं।

इसके अलावा किसान विकास केन्द्रों के वैज्ञानिकों, विस्तार अधिकारियों, विश्वविद्यालय शिक्षकों और उद्यमियों के लिए सेवाकाल के दौरान प्रशिक्षण और स्वरोजगार के लिए ग्रामीण व शहरी नौजवानों के वास्ते पेशेवर प्रशिक्षण के लिए तकनीकों के उन्नत क्षेत्रों में परिषद के आठ प्रशिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र भी काम कर रहे हैं। इन केन्द्रों में कार्य अनुभव, व्याख्यानों, फील्ड दौरों, प्रदर्शनों और वार्ताओं के जरिए प्रशिक्षण दिया जाता है।

तकनीक के आकलन और परिष्करण का काम संस्थान ग्राम-संपर्क कार्यक्रम के माध्यम से किया जाता है। इस समय यह कार्यक्रम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के 42 चुने हुए केन्द्रों पर चलाया जा रहा है।

प्रभाव

किसान विकास केन्द्रों की अग्रणी विस्तार प्रणालियों ने कई राज्यों में गतिविधियों को बढ़ावा दिया है। सदस्यों में सामग्री संसाधन प्रबंध के बारे में जागरुकता उत्पन्न करने में महाराष्ट्र में भूमिहीन मजदूरों के 'रैयतु संघ' तथा बकरी पालन, जैव कृषि और छिड़काव व सिंचाई के फायदों जैसी प्रौद्योगिकियों पर चर्चा के लिए 'अभिनव किसान क्लब' (अहमदनगर में) अग्रणी हैं।

हालांकि विस्तार परियोजनाएं व कार्यक्रम काफी सारे हैं और इनमें काफी अच्छा काम हुआ भी है, फिर भी देश के 10 करोड़ से अधिक किसानों तक तकनीक के पहुंचाने में हमें अभी एक लंबा रास्ता तय करना है। प्रयोगशालाओं में होने वाली उपज और किसानों के खेतों की पैदावार के अंतर से पता चलता है कि अभी अछूती क्षमताओं के विशाल भंडार मौजूद हैं। तकनीक हस्तांतरण का काम विशेष रूप से शुष्क भूमियों में अर्थात वर्षा-आधारित इलाकों में धीमा है। देश के कुल कृष्य क्षेत्र का इलाका 60 प्रतिशत है लेकिन राष्ट्रीय खाद्य टोकरी में इनका योगदान 40 प्रतिशत ही है। तकनीक हस्तांतरण के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट वित्त की है। इसमें शक नहीं कि संसाधनों की कमी के बावजूद राज्य अपना भरसक प्रयास कर रहे हैं। उदाहरणार्थ महाराष्ट्र ने जिला व इससे निचले स्तरों पर कृषि और सम्बद्ध विभागों के विकास कामकाज को मिला कर समन्वित विस्तार प्रदाय व्यवस्था शुरू की है। राजस्थान गैर-सरकारी संगठनों और परा-विस्तार कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित कर रहा है, जबकि केरल ने समूह कृषि को बढ़ावा देने के लिए पंचायत स्तरों पर कृषि भवन स्थापित किए हैं। पंजाब और आंध्र प्रदेश तकनीक हस्तांतरण में निजी क्षेत्र की भागीदारी का उदाहरण पेश कर रहे हैं।

किसान के स्तर पर तकनीक हस्तांतरण की एक बड़ी दिक्कत यह है कि अधिकांश किसान छोटे व सीमांत हैं, तथा नई तकनीकों को अपनाने में सबसे बड़ी बाधा उनकी माली हालत कमजोर होना है।

शायद विस्तार ढांचे को मजबूत करने का तरीका केवल गैर-सरकारी संगठन और निजी क्षेत्र संगठन नहीं हैं बल्कि राजनीतिक दलों को भी अपने प्रशिक्षित विस्तारकर्मी रखने होंगे जो दूर-दराज के व पिछड़े इलाकों में जाएंगे। अगर राजनीतिक पार्टियां इसे गंभीरता से लें, तो उनका यह काम उनके अपने हित में होगा क्योंकि उनके काम से जिन क्षेत्रों को लाभ पहुंचेगा, वे उनके विश्वसनीय वोट बैंक बन जाएंगे।

एक योजना के तहत प्रत्येक सांसद को एक करोड़ रुपये मिलते हैं जिसे वह अपने निर्वाचन क्षेत्र की विकास गतिविधियों पर खर्च करता है। अगर यह देखने के लिए एक सर्वेक्षण कराया जाए कि उनमें से कितने सांसद इस धन के कम से कम कुछ हिस्से का गांव तक तकनीक पहुंचाने तथा इन इलाकों में आमदनी और रोजगार के अवसर बढ़ाने में इस्तेमाल कर रहे हैं, तो यह बड़ा दिलचस्प होगा। ❑

(लेखक दिल्ली के एक प्रमुख पत्रकार हैं।)

भूल-सुधार

'**यो**जना' के दिसंबर 2000 अंक में पृष्ठ 48 पर 'नए प्रकाशन' कालम के अंत में समीक्षक का नाम **प्रेम प्रकाश भाटिया** पढ़ें जो भूलवश छूट गया था।

Do you aspire for a career in India's most dynamic and prestigious Govt. Service i.e.

CIVIL SERVICES

We can shape your dream in reality

JOIN

CHANAKYA

I.A.S. ACADEMY

FOR DISTINCT GUIDANCE & CONDUCIVE ATMOSPHERE

Subjects Offered : Gen. Studies/Essay, History, Pub. Admn., Geography, Pol. Sc., Psychology, Botany, Zoology, Maths, Physics, Pali Lit., Anthropology, Sociology & Philosophy

- Separate Classes in English & Hindi Medium
- Fully Air-conditioned Classrooms & Library
- HOSTEL FACILITY AVAILABLE

***Postal Courses** also available*

Read & Subscribe **CHANAKYA CIVIL SERVICES TODAY**
A complete magazine for **Civil Services Examination**
Available on News Stands

Branches also at SOUTH DELHI & AHMEDABAD

For details contact or write to :
A-42-44, Manushree Building, Comm. Complex,
Dr. Mukherjee Nagar, (Kingsway Camp) Delhi-110009.
Ph.: 765 3240, Telefax : 765 2337

(पृष्ठ 53 का शेष)

पढ़ाई-लिखाई के लिए पर्याप्त आमदनी कमाना शुरू कर दिया है, बल्कि अन्य भूमिहीन महिलाओं को भी आमदनी कमाने वाली गतिविधियों का प्रशिक्षण दे रही हैं। इन गतिविधियों से फसलों का उत्पादन बढ़ा है और पर्यावरण प्रदूषण का खतरा घटा है।

कामयाबी की इन मिसालों से पता चलता है कि प्रशिक्षण और प्रसार सेवाओं के जरिए ग्रामीण महिलाओं को किस तरह अधिकारसंपन्न बनाया जा सकता है। अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी लाखों महिलाएं हैं जिन्हें रोजाना एक वक्त भरपेट भोजन नहीं मिलता। छोटे और सिर्फ गुजर-बसर कर पाने वाले किसानों की अड़चनें अनगिनत हैं। ऋण मिलने में परेशानी, प्रसार और प्रशिक्षण सेवाओं के अभाव और अपनी उपज को बेचने की सुविधा न होने जैसी बाधाएं तो उन्हें विरासत में मिली हैं, इधर संरचनात्मक समायोजन के लिए हाल में अपनाई गई नीतियों से स्थिति और गंभीर हो गई है। कारण यह कि किसान अपने भरण-पोषण की बजाय बड़े पैमाने पर व्यावसायिक खेती करने लगे हैं, बाजार पर सरकारी खर्च घटा है और छोटे तथा मझोले किसानों को मूल्य समर्थन देने में भी सरकार कम खर्च कर रही है। इसका सबसे बुरा असर महिलाओं पर पड़ा है जिन्हें पुरुषों के मुकाबले ज्यादा खामियाजा भुगतना पड़ रहा है। उम्मीद है कि राष्ट्रीय कृषि नीति 2000 में कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित अन्य क्षेत्रों में महिलाओं को कारगर तरीके से अधिकारसंपन्न बनाने का कार्य जोर पकड़ेगा। ❑

(श्री बी.एस. पद्मनाभन दिल्ली के वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

IAS / PCS- 2001

REGULAR & POSTAL

English + Hindi Medium

MAINS/ P.T. + MAINS / P.T.

ECONOMICS
COMMERCE
PSYCHOLOGY
SOCIOLOGY
STATS/MATHS
GEN.STUDIES

New Batches • 20 Dec. • 10 Jan • 1Feb. • 1 July

Contact : Prof. Bijoy Goswami, Director (Studies)

Only At

CSISS

CIVIL SERVICES INSTITUTE OF SOCIAL SCIENCES

62/4,First Floor, Ber Sarai, P.O. Hauz Khas, New Delhi-16

Tel. : 011-5684121 E-mail : bijoy_goswami@hotmail.com

ONLY INSTITUTE TO PROVIDE THESE OPTIONALS

विकास और समृद्धि का एक वर्ष

गौरवमय प्रगति

- **प्र**धानमंत्री की अमेरिका यात्रा के पश्चात भारत-अमेरिका संबंधों में गुणात्मक सुधार।
- अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन एवं रूस के राष्ट्रपति पुतिन के भारत आगमन के पश्चात द्विपक्षी संबंधों में नई गतिशीलता।
- राष्ट्रीय सुरक्षा में वृद्धि हेतु रक्षा खर्च में 13,000 करोड़ रुपये की बढ़ोतरी।
- सुधारों के दूसरे चरण के अंगीकरण से आर्थिक विकास में तीव्रता।
- छत्तीसगढ़, झारखंड एवं उत्तरांचल नामक तीन नए राज्यों की स्थापना।
- संविधान की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग का गठन।
- आतंक-विरोधी भारत की नीति की अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा सराहना।
- राष्ट्रीय राजमार्गों के स्वर्णिम चतुर्भुज के निर्माण कार्य की शुरुआत।
- सूचना तकनीक के क्षेत्र में विकास को नया आयाम।
- गरीबी-रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों के लिए जनश्री बीमा योजना का श्रीगणेश।
- जम्मू-कश्मीर की जनता के लिए रेडियो एवं दूरदर्शन पर विशिष्ट कश्मीरी चैनल शुरू।
- प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना के तहत एक हजार से अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों में सड़क संपर्क की स्थापना का निर्णय।

सुरिंद्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली-110 001 से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित। दूरभाष : 3318626, 3319686
प्रधान संपादक : प्रेम द्विवेदी

रजि. सं. डी. एल. 12036/2001 लाइसेंस संख्या यू (डी.एन.)-53 डाक व्यय की पहली अदायगी किए बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस प्राप्त पंजी सं. 951/57
Reg. No. D.L. 12036/2001 R & Licence No. U (D.N.)-53 to post without pre-payment at DPSO, Delhi. R.N. 951/57

Information is Power : Be Informed.

Read YOJANA

A monthly journal, the only one of its kind, covering the whole gamut of development, socio-economic issues and current affairs.

Published in Assamese, Bengali, English, Gujarati, Hindi, Kannada, Malayalam, Marathi, Oriya, Punjabi, Tamil, Telugu and Urdu - reaching out to people country-wide.

Join the ranks of 5,00,000 discerning readers who opt for YOJANA.

YOJANA has incisive, authentic and well researched articles written by experts.

Have a cutting edge, be ahead of others. Subscribe today.

Subscription Rates : 1 Yr. - Rs.70/-; 2 Yrs. - Rs.135/-; 3 Yrs. - Rs.190/-.

Subscription by DD / MO / IPO in the name of Director, Publications Division, can be sent to :

The Advertisement & Circulation Manager, Publications Division, East Block-IV, Level-VII, R.K. Puram, New Delhi-110066. Tel. 6105590; Fax: 6175516 / 6193012.

Subscriptions will also be accepted at our sales emporia:

• Patiala House, Tilak Marg, **New Delhi**, Ph. 011-3387983; • Super Bazar, Connaught Circus, **New Delhi**, Ph. 011-3313308; • Hall No.196, Old Secretariat, **Delhi**, Ph. 011-3968906; • Rajaji Bhavan, Besant Nagar, **Chennai**, Ph. 044-4917673; • 8, Esplanade East, **Calcutta**, Ph. 033-2488030; • Bihar State Cooperative Building, Ashoka Rajpath, **Patna**, Ph. 0612-653823; • Press Road, **Thiruvananthapuram**, Ph. 0471-330650, • 27/6, Ram Mohan Rai Marg, **Lucknow**, Ph. 0522-208004; • Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, **Mumbai**, Ph. 022-2610081; • State Archaeological Museum Building, Public Gardens, **Hyderabad**, Ph. 040-236393; • 1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan. Koramangala, **Bangalore**, Ph. 080-5537244; • C.G.O. Bhavan, 'A' Wing, A.B. Road, **Indore**; • 80, Malviya Nagar, **Bhopal**; • B-7/B, Bhawani Singh Road, **Jaipur**.

For Yojana Tamil, Telugu, Malayalam, Kannada, Gujarati, Marathi, Bengali and Assamese, please enrol yourself with Editors of the respective magazines at the addresses given below:

Editor, Yojana (Marathi), Room No.38, 4th Floor, Yusuf Building, Veer Nariman Road, **Mumbai**, Ph. 022-2040461;

Editor, Yojana (Gujarati), Ambika Complex, 1st Floor, Above UCO Bank, Paldi, **Ahmedabad**, Ph. 079-6638670;

Editor, Yojana (Assamese), Naujan Road, Uzan Bazar, **Guwahati**, Ph. 0361-516792;

Editor, Yojana (Bengali), 8, Esplanade East, Ground Floor, **Calcutta**, Ph. 033-2482576;

Editor, Yojana (Tamil), 'A' Wing, Ground Floor, Shastri Bhavan, **Chennai**, Ph. 044-8272382;

Editor, Yojana (Telugu), 10-2-1, F.D.C. Complex, AC Guards, **Hyderabad**, Ph. 040-236579;

Editor, Yojana (Malayalam), 'Reshmi', 14/916, Vazhuthacadu, **Thiruvananthapuram**, Ph. 0471-63826;

Editor, Yojana (Kannada), 1st Floor, 'F' Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, **Bangalore**, Ph. 080-5537244.